उदयराज सिंह

बाल
को
सस्नेह

(डॉ० बालकृष्ण, रसायन-शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

चित्रा सिनेमा में आज तिल रखने की भी जगह नहीं। बदन से बदन छिल जाते, नजर से नजरें टकरा जातीं। उमस की बेपनाह गरमी, मगर लगता है कि सारी की सारी काशी नगरी उमड़ी चली आई है इस हॉल में। विश्वविद्यालय भी आज ही बन्द हुआ है इसलिए छात्रों का पूरा हंगामा है। गलियारी में कुर्सियाँ भी बिछी हैं मगर फिर भी लोग कोने में खड़े हैं। अजीब समाँ है। चित्रपट पर जमुना, बरुआ और सहगल का वह 'देवदास' जो दिखाया जा रहा है। एक छोर पर बिलमोरिया और सुलोचना तो दूसरे छोर पर जमुना और बरुआ की युगल जोड़ी—दोनों ही एक दूसरे के जवाब हैं, दोनों ही लाजवाब ! फिर सुर-संसार का राजा सहगल जब भी शहर में आता तो धूम मच जाती। चित्रपट-जगत् में उसका कोई भी जोड़ा न आया।

अजीत सिने-जगत् का रसिया है। जमुना-बरुआ उसके दिलपसन्द सितारे हैं और वे भी आए हैं शरत् बाबू के चित्र

देवदास में—वही शरत् जिनके साहित्य का अजीत पुराना हिमायती है। उनकी कहानियों-उपन्यासों को वह दर्जनों बार पढ़ गया है और जाने कितनी रातें उसकी गुजर गई हैं पारो के जीवन पर आँसू बहाते। शरत्-साहित्य से ऐसी भावुकता जो मिल गई है उसे। भला वह न आता तो देवदास देखने कौन आता! दो दिन पहले से ही टिकट खरीद लिया था।

शरत्—फिर जमुना, बरुआ और सहगल का प्रेमी अजीत, उस उमस में भी कैसे तीन घंटे बिता दिए उसे खुद पता नहीं। दरवाजे खुले तो उसकी आँखें जाने कितनी बार भींगकर भी फिर भींग रही हैं। सिनेमा से लोग-बाग निकल गए हैं मगर वह अपनी सीट पर से उठ-उठकर भी बैठ जाता है। उसके सामने अभी भी नाच रहा है वह करुण दृश्य—पारो का वह अन्तिम वाक्य—'ओह, मेरी अंगूठी!' और वह दौड़ पड़ती है श्मशान की ओर................कि आँगन का दरवाजा बन्द हो जाता है और वह उससे टकराकर चौखट पर गिर जाती है।

अजीत अभी अपने आप में आ ही रहा है कि किसी किशोरी के रोने की आवाज पर एकबारगी चौंक पड़ा—ऐं, वह तो उसी की बंडी को पकड़े रो रही है! शायद भीड़ में भटक गई है। घरवालों से बिछुड़ गई है। अजीत को उस पर दया आ गई। झट बड़े प्रेम से पूछा—'कहो, किसे

खोजती हो ?' वह रूआँसी होकर बोली—'माँ जाने किधर चली गई, दीदी भी दिखाई नहीं पड़ती..........।' वह फफक-फफक कर रोने लगी तो अजीत ने उसके आँसू पोंछते हुए कहा—'दुत् पगली, रोती क्यों हो ? चलो, तुम्हें घर पहुँचा दूँ। माँ भूल गई तो भूल जाने दो। मैं तो भूला नहीं हूँ। चलो-चलो, दूसरे शो की भीड़ आ रही है। निकल भागो।' इसी बीच मेहतरों ने झाड़ू लगाना भी शुरू कर दिया। चिनिया बादाम के छिलके ढेर-के-ढेर इकट्ठे हो गए।

अजीत ने साइकिल स्टैंड से साइकिल निकाली और उस किशोरी को पीछे कैरियर पर बिठाकर दशाश्वमेध की ओर बढ़ चला। उधर ही वह अपनी माँ के साथ रहती है। उसके आँसू अब रुक गए हैं और वह अजीत के सवालों का उत्तर ठीक-ठीक देती जा रही है।

'तुम्हारे घर पर कौन-कौन हैं ?'

'माँ, दीदी।'

'बस ?'

'जी।'

'नाम क्या है ?'

'माला।'

'बड़ा सुन्दर नाम है।.........उम्र तुम्हारी क्या होगी ?'

'यही तेरह-चौदह साल।'

'मगर तेरह-चौदह साल की लगती नहीं हो—मैं तो तुम्हें और भी छोटी समझता था। किस क्लास में पढ़ती हो?'

'नवें में। बालिका-विद्यालय में पढ़ती हूँ।'

'किसी चीज़ में खास शौक़?'

'गाना सीखती हूँ और सितार भी बजा लेती हूँ।'

'वाह, बड़ी गुणवन्ती हो! तब तो गाना भी सुनूँगा और सितार भी बजाकर सुनाना पड़ेगा।'

वह हँस पड़ी और अजीत ने ऐसा 'टर्न' लिया कि वह कसकर उसकी कमर न पकड़ लेती तो साइकिल से चारो खाने-चित हो जाती।

'मगर, हाँ, आज तुम छूट कैसे गई—क्या तुम्हारी माँ ने तुम्हें ढूँढ़ा नहीं?.......'

'जरूर ढूँढ़ती होंगी। मगर भीड़ ऐसी थी कि चाह कर भी हम एक साथ बैठ न सके और एक दूसरे को देखते हुए भी एक दूसरे के पास पहुँच न सके।'

'मगर मेरा ख्याल है कि वे अभी भी तुम्हारा बाट सिनेमा में देख रही होंगी या पुलिस चौकी में खबर देने दौड़ी गई होंगी। अच्छा तमाशा रहा आज!'

'मगर आज ऐसी घटना न होती तो आप जैसे सहृदय

अभिभावक से मुझे भेंट कैसे होती ? यह तो आपकी सहृदयता है कि मैं बाल-बाल बच गई नहीं तो इस नगरी में जो बिटिया भूली सो भूल ही गई।.........'

अजीत का हृदय करुणा से अभिभूत हो गया। उसके मन में उसके प्रति जाने कैसा मोह जाग उठा। उसकी आँखें फिर गीली हो गईं। किशोरी भी गम्भीर हो गई.........

कि उसका मकान आ गया। वह साइकिल से झट उतर पड़ी और विनती की—'चलिए, ऊपर माँ और दीदी से भी मिल लीजिए। आपको देखकर वे बहुत खुश होंगी।'

अजीत उसके पीछे-पीछे कोठे पर पहुँचा। माँ-बेटी एक दूसरे को देखते ही छाती से लिपट गईं। उसकी दीदी अपनी बहन के नए अभिभावक को बड़ी कृतज्ञता की दृष्टि से देखती और बार-बार मनुहारती—'बैठ जाइए', मगर माँ-बेटी के मधुर मिलन को देखकर अजीत इस तरह जड़वत् हो रहा है कि उसे कुछ सूझ ही न रहा है। जब माँ के आँसू रुके तो उसे बहुत आशीर्वाद देती हुई अपनी बगल में बिठा लिया और भावनाओं से अभिभूत हो कहने लगी—'बेटा, तुमने तो आज मुझे नई ज़िन्दगी दी। मैं तो पुलिस थाने में जाते ही जाते मूर्च्छित हो गिर गई थी। कुछ सूझ न रहा था किधर जाऊँ, क्या करूँ! जनम की मारी विधवा जो ठहरी। कोई सहारा नहीं, किसी

का आसरा नहीं।' उसकी आँखों में फिर आँसू छलछला आए। .... 'मैं तो सिनेमा कभी जाती नहीं—लता और माला की देखरेख के लिए मजबूरन जाना पड़ता है। आज कैसी सायत थी—धन्य है ईश्वर! तूने ही मेरी लाज रख ली। .... बेटा, तू आज मेरे लिए भगवान् बन गया।........'

इसी बीच लता ने एक गिलास लस्सी तथा कुछ मिठाइयाँ अजीत के सामने लाकर रख दीं। उसकी माँ कहती ही गई—'बेटा, माला के पिता मुझे इन दोनों बच्चियों की माँ बनाकर जाने कबके स्वर्ग सिधार गए। आज मुझ अभागिन को कोई सहारा नहीं। बालिका-विद्यालय की टीचरी न मिलती तो मैं दर-दर ठोकर खाती।........खैर....कभी-कभी तुम हमलोगों की भी सुध लेते रहना। युग-युग जियो, बेटा! युग-युग जियो।'

❋

दूसरे दिन जब अजीत माला के घर पहुँचा तो शाम गुजर चुकी थी और चारों ओर गाढ़ी कालिमा घिर रही थी। माँ-बेटी आँगन में बैठी चाट खा रही थीं और घर में बत्ती जलाना भी भूल गई थीं। पहले तो अजीत को ऐसा लगा कि घर में कोई नहीं है और वह लौट जाए। मगर सीढ़ी पर जब चढ़ने लगा तो ऐसा लगा कि माला अपनी माँ से पूछ रही है—'माँ, वह अभी तक नहीं आए। आने का वादा कर गए थे। आखिर रह कहाँ गए?' और तब वह झट ऊपर की ओर बढ़ चला।

'माला, माला!' अजीत ने एक धीमी आवाज़ दी। माला तीर की तरह सीढ़ी की ओर दौड़ी और उछल पड़ी—'वह आ गए माँ, आ गए—आ गए!'

अजीत ने माँ को प्रणाम किया और उसी चारपाई पर झिझकते-झिझकते बैठ गया। माला ने झट एक तश्तरी में

चाट तथा चटनी रखकर उसे थमा दिया तो माँ ने टोका—'क्या लड़कपन कर रही है : तेरा बचपना कभी न जाएगा । जा, नीचे दुकान से गर्म-गर्म चाट ला ।' माला जाने को तैयार हुई तो अजीत ने रोक दिया—'नहीं-नहीं, बैठो । इतनी गर्मी में ठण्डा चाट ही मजा देगा ।' और वह हँस पड़ा ।

'बड़ी देर लगाई बेटा, कहाँ रह गए थे ?'

'घर जाने की तैयारी है माँ जी, यह-वह का झमेला, बाज़ार में ही सारी सन्ध्या बीत गई । माँ की फरमाइश और, भाभी की कुछ और ।'

'यूनिवर्सिटी तो अभी कल ही बन्द हुई है । आज ही से घर भागने की तैयारी क्यों करने लगे ? उधर तो इम्तहान की ही परेशानी रही । दो-चार दिन घूम-फिर लो तो घर जाना ।'

'हाँ, मैं तो रुकना चाहता हूँ मगर मेस के महराज हल्ला मचाए हुए हैं । घर जाने की तैयारी में चूल्हा-चक्की सब बन्द कर देना चाहते हैं ।'

'मेरा घर भी तो तुम्हारा ही घर है । दो-चार दिन यहीं रह जाना । मेस जैसा अच्छा खाना तो यहाँ न मिलेगा ; हाँ, जो हम खाते हैं, वही तुम्हें भी खिलाएँगे ।'

अजीत ऐसा उत्तर सुनने को तैयार न था । वह कुछ

अकचका गया। कोई जवाब उसे सूझ नहीं रहा था। माला ने उसे सहायता दी—'वाह, आप चुप क्यों हो गए? आपको आज रात से यहीं खाना होगा। समझे?.........'

उसने इतनी थोड़ी बात को कुछ इस अपनापन से कहा कि अजीत अवाक् हो गया। चौबीस घण्टे में ही इतनी आत्मीयता पाने के योग्य वह न था। माँ-बेटी के सवालों का जवाब उसने एक मधुर मुस्कान द्वारा दे दिया।

स्वीकृति मिली या अस्वीकृति इसे तो उस समय कोई भाँप न सका मगर घर की महरी ने रात में जूठे बर्त्तनों के अम्बार को माँजते हुए यह जरूर महसूस किया कि आज रात एक जूठी थाली की तायदाद शायद और बढ़ गई। उसी रात डली काटते हुए माँ ने कहा—'लता, लड़का बड़ा शीलवान् जान पड़ता है। देखती नहीं, एक दिन में ही कितना घुल-मिल गया! मुझे तो एहसास ही नहीं होता कि कल तक जो अजनबी था वह आज कैसे इतना आत्मीय बन गया!'

'यह गुण सबमें नहीं होता माँ!'—लता ने माँ की बात की ताईद की।

किशोरी माला ने कुछ और जोड़ दिया—'दिल का बड़ा साफ़ आदमी मालूम होता है, माँ! छली ज़रा भी नहीं

दिखता। देखो न, तनिक जोर देने पर ही झट खाने को तैयार हो गया।'

'और कितने प्रेम से खाना खाया! जैसे अपना घर हो।' -माँ ने फिर उसकी तारीफ़ की।

'मीठा का बड़ा प्रेमी मालूम पड़ता है। मिठाई उसने माँग-माँगकर खाई।'—लता ने कहा।

'हाँ, बिल्कुल बच्चों जैसा।'

माँ-बेटी कबतक बातें करती रहीं, किसी को भी पता नहीं मगर माला का मन जो बचपन और यौवन की सीमा-रेखा पर नाच रहा है किसी अज्ञात कल्पना की ओर उड़ चला। अजीत को उसने अपने घर के नीरस जीवन में रसराज सदृश पाया। जिस बालिका को पिता का प्यार न मिला, भाई का दुलार सुलभ न हुआ उसे एकाएक स्नेह का ऐसा स्रोत मिल जाएगा इसकी उसने कभी कल्पना भी न की थी। माँ को दुःख-धन्धा से फ़ुर्सत ही कहाँ कि माला को दुलारे! लता को भी कॉलेज की पढ़ाई से समय कहाँ कि बहन को जरा पुचकार दे! फिर ऐसे सूखे जीवन में एक अज्ञात रस की फुहार की प्रतीक्षा में माला चहक उठी—नाच उठी।

'आज एक हफ्ता गुजर गया। दो दिन के बदले में सात दिन ठहर गया। अब चाहता हूँ आज रात ही चला जाऊँ। माँ इंतजार कर रही होंगी।'— ताँगे पर सवार अजीत ने लता-माला के सामने अर्जी पेश की।

'वाह जनाब! दो ही पिक्चर पर बस? अभी तो कल 'अछूत कन्या' देखना है और परसों 'विद्यापति'—तभी आपको घर जाने की छुट्टी मिलेगी!'—लता-माला ने आँखें नचाकर एक साथ यह प्रस्ताव पेश कर दिया।

अजीत परीशान है। स्वीकार करे तो मुश्किल, इनकार करे तो मुश्किल। इधर लता-माला का इसरार, उधर माँ की परीशानी, भाई की गार्जियनी।

'देखो लता, मैं अब यहाँ एक दिन भी नहीं ठहर सकता। भैया सुनेंगे तो मेरी खूब खबर लेंगे। एक हफ्ते की देर का हिसाब तो यह-वह कह कर चुका दूँगा, मगर इससे अधिक का

हीला चल न पाएगा। उधर माँ भी घबड़ा-घबड़ाकर जान दे देगी।'—अजीत ने बड़ी आजिजी से कहा।

'देखिए अजीत बाबू! आप कोई नादान नहीं कि आपको अब गार्जियनी की जरूरत हो। आप बी० एस-सी० में पढ़ते हैं। कल ग्रैजुएट हो जाएँगे। फिर ऐसे बचपने की बात क्यों करते हैं?'—लता ने कटाक्ष किया।

'मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ? मेरी परीशानी......'

कि ताँगेवाले ने कहा—'बाबूजी, बुलानाला आ गया। देखिए, वही रही ऊँची हवेली—राजनारायण बाबू की कोठी। हाते के अन्दर तो ताँगा पहुँच न पाएगा।'

'बस, यहीं रोक दो।' कहता हुआ अजीत ताँगे से फाटक पर ही उतर कर राजनारायण बाबू की कोठी की ओर बढ़ा। लता-माला ताँगे में ही बैठी रहीं।

अजीत को देखते ही राजनारायण ने टोका—'वाह, अभी आप यहीं तशरीफ़ रखते हैं? मैं तो समझता था कि हजरत अबतक घर पहुँच गए होंगे।'

'नहीं यार, अभी यहीं चिपका पड़ा हूँ। रोज प्रोग्राम बनता है, रोज बिगड़ता है।'

'आखिर बात क्या है? खैरियत तो है!'

'हाँ, सब खैरियत ही है।'

राजनारायण अबतक 'शेव' कर चुका था। हाथ-मुँह धोने को जब वह उठा तो अपने बारजे से देखा कि एक ताँगा खड़ा है और उस पर दो लड़कियाँ बैठी हैं। वह अनायास ही अजीत से पूछ बैठा—'क्यों, उस ताँगे पर तुम आए हो?'

'हाँ।'

'घर से कुछ लोग आए हैं क्या? यहीं ड्राइंग रूम में बिठा दो।'

'नहीं-नहीं.........उन्हें वहीं रहने दो......मैं तो अब जा......' अजीत ने ज़रा झेंपते हुए कहा।

'भाई, यह तुम्हारा ही घर है—उन्हें क्यों नहीं......।'

'शायद वे बुरा मान जायँ......।'

'कोई गैर थोड़े ही हैं—घर की ही तो हैं—।'

अजीत चुप हो गया। राजनारायण एक क्षण उसे निहारता रहा। वह तो उड़ती चिड़िया पकड़ ले। चट बोल उठा—'तुम नहीं बुलाते तो मैं ही उन्हें......आखिर ये तुम्हारी हैं कौन?'

'..................'

.............'राजनारायण अजीत की कहानी मुस्कुराता सुनता रहा। उसकी उम्र भी अपने सहपाठी अजीत की ही होगी। मगर ज़िन्दगी के अनेकों अनुभव हो चुके हैं उसे।

आखिर बनारसी रईस जो ठहरा वह! अजीत जब अपनी कहानी कह चुका तो राजनारायण ने बड़े जोरों का ठहाका लगाया और बोला—'यार, अब तुम भी उड़ती चिड़िया पकड़ने लगे? ऐसी तो मुझे उम्मीद नहीं थी। बड़े छिपे-रुस्तम निकले!'

'नहीं, ऐसी बात नहीं। भला मैं उन तक कब पहुँचता! यह तो एक दैवी घटना थी जिसने मुझे उनके समीप पहुँचा दिया।'

'समीप पहुँचकर भी तुम उनसे दूर रह सकते हो। फिर सटे क्यों जाते हो?'

'वह माला जो मुझे कभी छोड़ती नहीं। उस दिन संयोग से ऐसी भेंट हुई उससे कि अब जान पड़ता है कि मैं उसको जन्म-जन्म से जानता हूँ। मुझसे बड़ी घुल-मिल गई है और रात-दिन मुझसे चिपकी रहती है। अभी बड़ी भोली है। उसकी प्यारी-प्यारी मासूम सूरत किसे न रिझा दे! उसे जब देखता हूँ तो ऐसा भान होता है कि वह मेरे परिवार की ही कोई बालिका है। इन सात दिनों में उसने मुझे ऐसा बना दिया है कि जैसे मैं उसके हाथ का खिलौना हूँ। उसे मैंने कितने खिलौने भी दिए हैं मगर सबसे बड़ा खिलौना उसका मैं ही हो गया हूँ। समय पर जब खाने न आता हूँ तब डाँट पड़ती है,

कम खाता हूँ तब डाँट पड़ती है, उसकी पसन्द की चीजें जब न खाता हूँ तब डाँट पड़ती है और शाम को यदि उसे घुमाने या सिनेमा दिखाने न ले जाऊँ तब उसकी डाँट पड़ती है। वह एक अजब पहेली है मेरे लिए राज ! जाने उस जन्म की मेरी संगिनी हो और एकाएक मुझे पाकर अब छोड़ना ही नहीं चाहती हो। और मुझे भी जाने क्यों इतनी ममता जग गई है उसके लिए...'

अजीत अपनी बातें कह ही रहा था कि राजनारायण उठ खड़ा हुआ और आँख मारते हुए बोला—'क्यों मुझे बेवकूफ़ बना रहे हो अजीत ! माला नहीं, लता से तुम्हें लगाव हो गया है। तुम मुझे भुलावे में रखकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हो। बनो नहीं। लता का भूत तुम पर सवार हो गया है। तुम यहीं बैठो। मैं उन्हें बुलाकर ड्राइंग रूम में बिठाता हूँ, फिर लता का मुआयना होगा।—' बिना हिचक के उन्हें बुलाने को राज जीने से नीचे उतर गया। अजीत टका सा मुँह लिए वहीं बैठा रहा।

लता-माला को लेकर जब राजनारायण ड्राइंग रूम में पहुँचा तो झेंपते हुए अजीत ने कहा—'लता, आप हैं मेरे अनन्य मित्र श्री राजनारायण। मेरे साथ ही पढ़ते हैं। एक ही कक्षा—एक ही सेक्शन में....'

'और एक ही रंग, एक ही क़द और एक ही सूरत—कहिए, और कुछ परिचय देना है?' राजनारायण ने ठहाका मारते हुए कहा। फिर उसने अपने नौकर को बुलाकर ऑर्डर दिया—'रामरतन की दूकान से चार गिलास लस्सी लाओ। बालाई की तह उसमें पूरी रहे।'

लता ने बड़ी नम्रता से कहा—'आप तकल्लुफ़ क्यों कर रहे हैं......?'

'वाह साहब! यह तो मेरा सौभाग्य है कि आप मेरे यहाँ पधारीं। फिर इतनी भी ख़ातिर... ?'

कुछ क्षण को कमरे में सन्नाटा छा गया। माला अजीत को देखती रही मानों इस नए वातावरण में उसे उसके सहारे की अपेक्षा हो और लता कभी राज बाबू को देखती और कभी बगल में खड़ी एक नग्न प्रस्तर-मूर्ति को। उसके चेहरे पर एक दीप्ति थी, आत्मविश्वास की एक गहरी रेखा। राज भी माला और अजीत को देखते-देखते कभी तिरछी और कभी पूरी नज़र से लता को निहार लेता। उसे कुछ ही क्षणों में भास गया कि माला—माला की तरह किसी के गले में या चरणों में लिपट कर अपनी नम्रता का सौरभ बिखेरती रहती है और लता—लता की तरह किसी के चरणों को छूते ही सर तक हावी हो जाने की क्षमता रखती है। फिर उस क्षणिक स्तब्धता को

भंग करते हुए राज ने पूछा—'क्यों लता जी, आप कहाँ पढ़ती हैं?'

'यहीं बी० एच० यू० में सेकंड इयर में पढ़ती हूँ। आपने मुझे पहिचाना नहीं? उस दिन वाद-विवाद प्रतियोगिता में मैं ही तो विश्वविद्यालय की तरफ़ से बोल रही थी। आप ही तो मेरी मेज पर एक गिलास पानी रख गए थे।'

राज जरा झेंपते हुए झट बोला—हाँ, हाँ, खूब पहिचाना। मैं जाने कबसे सोच रहा था कि आपको कहीं देखा है। लीजिए, मेरा अनुमान सही निकला।'

'माला भी मेरे साथ गई थी, क्या आपने इसे भी नहीं पहिचाना?'

'नहीं, इसे मैं उस दिन देख न सका। बहुत भीड़ थी। और मैं ही यूनियन की तरफ़ से सारा प्रबन्ध कर रहा था।'

इसी बीच लस्सी आ गई। चारों ने गला तर किया। फिर बनारसी पान की गिलौरियाँ गाल तले दबाईं। इधर-उधर की चर्चा काफ़ी देर तक चलती रही। बाद में लता ने जाने की इजाज़त माँगी तो राज ने अपनी मोटर हाजिर कर दी।

'वाह! आप फिर तकल्लुफ़ करने लगे! हमारा तो ताँगा....।'

'जी नहीं, आपका ताँगा कभी का जा चुका।'

'उसके पैसे ?'

'मेरे पैसे और अजीत के पैसे दो नहीं।'

अजीत ने आपत्ति की—'वाह, यह तुमने क्या किया ? पैसे तो मुझसे ले लेते !'

'अमाँ यार, छोड़ो भी यह पैसे की बात। यह तो बताओ, शाम का प्रोग्राम क्या होगा ?'

'तुम्हीं बताओ न !'

'तो चलो, आज चित्रा में 'विद्यापति' देखें—लाजवाब फिल्म है।'

'ए लो, तुमने तो माला के मन की बात कह दी !'—अजीत ने कटाक्ष किया।

'वाह, और अपने मन की नहीं ?'—माला ने शोर मचाया।

'नहीं भाई, सबके मन की बात है—सबके। चलो, शाम का प्रोग्राम तय रहा। मैं ही आपलोगों को आकर 'पिकअप' कर लूँगा।'—राज ने फैसला दिया।

मोटर से पहुँचाने के बहाने राज ने उनका घर भी देख लिया। माला के घर अजीत भी उतर गया। दिन में उसका खाना वहीं था।

✣

'इन्टरवल' में राजनारायण ने चार प्लेट आइसक्रीम ऑर्डर किया। राज की बगल में लता है, अजीत की बगल में माला। लता के कन्धों को थपथपाते हुए राज ने कहा—'कहिए, पिक्चर कैसी लगी?'

'अबतक तो बहुत अच्छी लगी। क्या गाने और क्या ऐक्टिंग—दोनों कमाल के हैं। काननबाला ने तो जान डाल दी। उसकी आँखें! ओह, अजब का स्फुरण है उनमें—'

'बिलकुल आप जैसी!—' राज की नज़रों में शोख़ी है।

'ओ, तो यह बात है? धन्यवाद!'—लता ने आँखें नचाते हुए कहा।

'कुछ मुझे भी धन्यवाद दो। आखिर बात क्या है?'—अजीत ने उलहना दिया।

'कुछ नहीं, राज बाबू कानन की आँखों की तुलना मेरी आँखों से कर रहे हैं!'—लता ने कहा।

'ख्याल तो बुरा नहीं !'—अजीत ने जवाब दिया।

'तो आप भी दाद दे रहे हैं? शुक्रिया—'

तबतक आइसक्रीम आ गया। सभी रसना तृप्त करने लगे। बत्तियाँ भी गुल हो गईं।

खेल का दूसरा दौर शुरू हुआ। सभी के० सी० डे के गाने तथा कानन के ऐक्टिंग पर मुग्ध हो गए। अन्त का पुजारी-नृत्य तो घण्टों दिमाग में नाचता रहा। इतना हृदय-विदारक था वह। जब खेल खत्म हुआ तो कला की इस सरिता से किसी का भी जी बाहर निकलने को न चाहता था। सभी उसी में डूबते-उतराते थे। पर दूसरे शो का भीड़-भड़ाका तुरत ही शुरू हो गया और सीट छोड़ सभी को बाहर निकलना ही पड़ा।

बाहर खचाखच भीड़ है। कन्धे से कन्धे छिल रहे हैं। किसी तरह वे निकल कर मोटर तक पहुँचे। सभी गम्भीर मुद्रा में हैं। उस गम्भीरता को भंग करते हुए राज ने छेड़ा—'बड़ी उमस है और अभी तो नौ ही बजे हैं। चलो अजीत, इस चाँदनी में मोटर का हुड गिराकर युनिवर्सिटी तक मटरगश्ती कर आया जाय। बड़ा मजा आएगा।'

'नहीं-नहीं, राज बाबू! हमें घर पहुँचा दीजिए। माँ घर में अकेली घबड़ा रही होंगी'—लता ने आपत्ति की।

'ज्यादा देर न लगेगी। यही आध घण्टे-पैंतालीस मिनट। गर्मी की रात है। अभी देर क्या हुई है! क्यों माला जी, आपकी क्या राय है?'

माला मुस्कुराकर चुप हो गई। अजीत माला के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था कि राज ने चट कहा—'मौनं स्वीकृति-लक्षणम्—चलिए-चलिए, घूम आया जाय।'

फिर चारो मटरगश्ती को निकल पड़े। शहर की उमस से निकलते ही झर-झर लगते समीर ने अंग-अंग में स्फूर्ति भर दी। अनायास राज ने लता को छेड़ा—'लता जी, भगवान् किसी भी नारी को कुरूप न बनाए। कुरूप होना नारी के लिए सबसे बड़ा दण्ड है।'

'वाह, यह कैसी दलील है! पुरुष कितना भी कुरूप हो तो कोई परवा नहीं और नारी जरा भी कुरूप हो गई तो दंडित हो गई? वाह साहब, वाह! यह तो अच्छा रहा!'—लता की भौंहें तन गईं।

'लता जी, आप नाराज न हों। एक मिसाल ले लीजिए—यदि अनुराधा कुरूप होती, उसकी आँखों में वह उत्तेजना, वह मादकता न होती, तो लाख गले की काकली रहते भी आज विद्यापति में तन से तन न छिलते।'

'यह तो आपकी नजर रही राज बाबू! मगर जो कला का

सच्चा पारखी होगा वह कलाकार की कला, संगीत के सुर पर ही रीझ जाएगा। उसे आँख खोलकर सुने या आँख बन्द कर—उसके लिए दोनों बराबर है। के० सी० डे तो अन्धा है—सूरत भी जाने कैसा—मगर 'अनुराधा, ओ अनुराधा!' जब पुकारता है तो रोमाञ्च हो आता है और जब 'गोकुल से गए गिरिधारी, भई सूनी नगरी सारी'—छेड़ बैठता तो सारी मजलिस झूम उठती। ऐसा दर्द है उसके स्वर में—'

'मगर आप भूलती हैं कि वह पुरुष है।'

'फिर आप वही भूल कर रहे हैं। कला के प्रांगण में पुरुष और नारी के केवल रूप पर ही न जाइए। कला का पुजारी सूरत से उलझता नहीं, उसे तो स्वर चाहिए, लय चाहिए—'

'और सौंदर्य भी।'

'जरूर, मगर जो आँख को दिखता है, रुचता है, वहीं तक सौंदर्य सीमित नहीं है। जो आँख से न दिखता हो, जो हाथ से स्पर्श न होता हो वहाँ भी तो सौंदर्य है।'

'यहीं आप भूलती हैं। जो सौंदर्य आँखों में समा जाए, उसी में तो आकर्षण है—एक जादू।'

'आप भी कैसी बातें करते हैं, राज बाबू? जरा गाड़ी इसी वीरान में खड़ी कर दें। कैसी सुहानी चाँदनी है और कैसा

सुन्दर समीर ! आप स्टियरिंग पर ही बैठे रहें। जरा मेरी भी मिसाल लीजिए।'

राज ने गाड़ी खड़ी कर दी। लता जोश में है। उसने माला से चट कहा—'माला, जरा सुना तो बहन—देखत हूँ अब बाट पिया की, जल से भरे मोरे नैन—शरमा नहीं, जरा छेड़ तो वह तान।'

माला ने रागिनी छेड़ दी। सारा वातावरण मुखर उठा। उसकी स्वरलहरी की करामात देखकर राज तो मन्त्रमुग्ध हो गया और अजीत चकित। उन्हें क्या पता था कि इस साँवली-सलोनी मासूम सूरत में इतनी सीरत है—इतनी सिफ्त है! राज तो स्टियरिंग पकड़े अपनी सीट पर बैठा-बैठा डूबता-उतराता रहा और बगल में बैठा अजीत माला के मुख पर उभरती वेदना की लहर को देखना चाहता है मगर चाँदनी में इतनी जोत कहाँ कि वह उसे देख सके! माला की स्वरलहरी उस निशीथ में बिजली की तरह कौंध जाती और दूर-दूर से लोग आकर मोटर को घेर कर बैठ जाते। पलक मारते वह सुनसान वीरान जन-समूह से गुलजार हो गया।

जब स्वर-गंगा की धारा बन्द हुई तो राज को जान पड़ा कि वह किसी तन्द्रा से जाग पड़ा है—कल्पना-लोक से नीचे

आ रहा है और अजीत तो अभी भी आँख मूँदे, लीन हो कुछ गुनगुना रहा है ।

फिर लता ने कहा—'बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई । राज बाबू, अब गाड़ी स्टार्ट कीजिए । ''''देखा आपने—कला के पारखी बिना आँख से देखे ही वहाँ जुट गए और आँख मूँद कर रस लेते रहे''''और आप भी तो इधर ही मुख किए किसी कल्पना में डूबे रहे । इस रात्रि में माला की सूरत को कोई ठीक-ठीक देख भी न पाया होगा परन्तु न देखकर भी उसके सौंदर्य पर सभी रीझ गए ।'

'कुछ न पूछिए लता जी, मैं हारा और आप जीतीं ।' राज गाड़ी स्टार्ट करता बोला । अजीत ने भी कहा—'राज, आज तुम कला और सौंदर्य पर बहस न छेड़ते तो मुझे माला की इस सुषुप्त प्रतिभा का पता न चलता ।'

'तुम भी क्या बात करते हो ! यह सुषुप्त नहीं, जाग्रत है—किसी जाग्रत देवी की वाणी के सदृश ।'

'जो हो, मगर मेरे लिए तो आज तक सुषुप्त ही थी ।'

❖

कल रात माला के घर से खाना खाकर लौटते-लौटते अजीत को काफ़ी देर हो गई थी और इसीलिए आज वह बड़ी देर तक सोता रहा। यदि मँगरू आकर दरवाजा न खटखटाता तो वह अभी घण्टों सोता रहता। बाबू को अभी भी पलंग पर ही पड़े देखकर होस्टल के चपरासी मँगरू ने पूछा—'क्या बाबू, तबीयत खराब है? आज बहुत देर....।'

'नहीं जी, कल रात सिनेमा देखकर लौटते-लौटते बहुत देर हो गई।'

'हाँ, कल कमलेश्वर बाबू और राजेश्वर बाबू भी बहुत रात गए आए। अभी दस नम्बर और आठ नम्बर के बाबू भी यहीं हैं।'

'वे कब जा रहे हैं?'

'आज चले जाएँगे। और आपका प्रोग्राम?'

'हम भी आज-कल ही में चले जाएँगे।'

'तो रुक क्यों गए बाबू आप ? वे लोग तो कोई इम्तहान दे रहे थे।'

'हाँ, मैं भी एक परीक्षा ही दे रहा था। आज उससे मुक्ति मिल गई तो कल चला जाऊँ।'

मँगल अजीत की अटपटी वाणी नहीं समझ सका।

अजीत कुछ देर अपने में ही उलझा पड़ा रहा। फिर अखबार पढ़ने लगा और मन कल रात की घटना पर नाचने लगा—ओह, क्या दृश्य था वह! ऐसा जादू तो आज तक कभी देखा नहीं। कल्पनातीत घटना! माला में यह शक्ति! एक मासूम दिखनेवाली बच्ची में यह करामात! जब तक उसकी स्वर-लहरी गूँजती रही, सभी मूकप्राय हो रहे। स्वर का एक नया संसार उतर आया इस धरती पर। गले में यह थिरकन, यह कम्पन!.........

रात भर उसकी गूँज कानों में गूँजती रही और अभी भी गूँज रही है। पारखलाल भी रात भर संगीत-सम्मेलन देखकर भोर में लौटे थे। पर इसके आगे तो वह भी मात हैं। हैरत में है अजीत। उसे विश्वास ही नहीं होता कि माला के पास इतना सुन्दर गला है—ऐसी अद्वितीय चमत्कृत कला!

दस बजे जब वह माला के घर पहुँचा तो पाया कि माला आज लखनऊ-कुरता उतारकर एक सुफेद धुली हुई महीन साड़ी

पहिने, कुञ्जी के गुच्छे से खेल रही है। उसके खुले हुए घने केश कन्धे तथा पीठ पर छितरा गए हैं। चेहरे पर एक अनोखी दीप्ति है—औचक चमक। अजीत उसे देखते ही अकचका गया—'वाह, क्या तुम वही माला हो? रात भर में इतनी बड़ी हो गई? तुम बदल गई हो या मेरी आँखें ही बदल गई हैं?'

'साड़ी जो पहिने हूँ!'

'ओ, अब समझा—कपड़े में भी इतनी करामात है कि वह युवती को किशोरी बना दे और किशोरी को युवती! इस लिबास में तो कभी भी मैं तुम्हें साइकिल के कैरियर पर बिठा-कर घर पहुंचा न पाता!' —वह जोर से हँस पड़ा।

माला का चेहरा शर्म से लाल हो उठा।

'माँ कहाँ हैं?'

'चौके में—'

'लता जी?'

'पूजा-घर में—'

'बड़ी पुजारिन बनी हैं, बात क्या है?'

इसी बीच लता चली आई तो अजीत ने फिर छेड़ा—"कहिए, शादी जल्द हो इसकी प्रार्थना अभी से हो रही है? कौन-कौन सी मिन्नतें मान रखी हैं आपने?'

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, माँ को पूजा करने की फुर्सत न मिली तो मैंने ही·····हाँ, कहिए अजीत बाबू, कल रात का गाना कैसा लगा ?'

'कुछ न पूछिए लता जी, मुझे तो मालूम ही न था कि माला छिपी रुस्तम है। अब तो यह कहना मुश्किल है कि वह गीत अनुराधा ने सुन्दर गाया या माला ने। कल कानन की जगह पर यदि कहीं माला ने अभिनय किया होता तो सिनेमा-हॉल में टिकट के लिए मार पड़ती।'

माला का चेहरा गर्व से खिल उठा।

'राज बाबू तो कल काफ़ी छके। उनकी सारी दलील फ़्लैट हो गई।'—लता ने विजय की मुद्रा में कहा।

'कहा तो, मैं हारा और आप जीतीं'—एक बुलन्द आवाज़ में कहते हुए राज नारायण ने कमरे में प्रवेश किया। सभी चौंक कर हँस पड़े। लता कुछ शरमा भी गई। उसने कभी सोचा भी न था कि ऐसा होगा। फिर अपने को ज़ब्त करती हुई उसने झट कहा—'आपकी बड़ी लम्बी ज़िन्दगी होगी राज बाबू, आप ही की चर्चा चल रही थी कि आप पहुँच गए·····'

'जी, मेरी बड़ी अच्छी चर्चा चल रही थी: शुक्रिया-शुक्रिया!'

लता ज़रा और झेंप गई।

'हाँ, माला को तो बधाई देना मैं भूल ही गया था। माला! वाह, गजब है तुम्हारा गला। तुम्हारी स्वर-लहरी रात भर मेरे कानों में गूँजती रही, मन में उमगती रही। यह उम्र और यह रेयाज, यह प्रतिभा! ओह, कमाल है!'

'हाँ, सचमुच माला के लिए उज्ज्वल भविष्य है। इस कला को और बढ़ाओ, फिर भविष्य तो तुम्हारे हाथ आकर रहेगा।'—अजीत ने भी दाद दी।

'राज बाबू! अभी तो आपने इसकी कला का एक ही पक्ष देखा है—अब दूसरा पक्ष भी देखिए।' कहकर लता माला की ओर मुड़ी और बोली—'ला तो अपनी सितार बहन, छेड़ एक मींड़ जो दिल को छू ले।'

माला गर्व और उल्लास से खिल गई। उसने झट सितार को उठाकर तारों को झनझना दिया। फिर तो उन बेजान तारों में ऐसी जान आ गई कि उस झङ्कार से सभी मन्त्रमुग्ध हो गए। उसकी उँगलियों की करामात ने तो सभी को पामाल कर दिया। एक झङ्कार, एक लहर, एक संवेदनशील मींड़ पर सभी झूम उठे। चौके का खाना छोड़कर उसकी माँ भी एक कोने में बैठ गई। अजीत तो फिर आश्चर्यचकित हो गया। सितार के तार-सी पतली इस किशोरी में इतनी क्षमता, इतनी कला! गले और उँगलियों में ऐसा जादू!

उसने तो इसकी कल्पना भी नहीं की थी। राज भी अवाक् था। अमीरों की दुनिया उसने बहुत देखी थी मगर एक मध्यम वर्गीय परिवार में ऐसी कला देखकर वह दंग रह गया। जब माला ने सितार-वादन बन्द किया तो सभी एकबारगी कह उठे—'वाह! वाह!! खूब! क्या खूब!!'

'माला! तुम तो कला का मूर्त रूप हो। तुम में दैवी शक्ति है—क्यों अजीत?' —राज ने माला की तारीफ़ की।

'हाँ भई, यह तो कला की जीती-जागती प्रतिमा है।'

'बेटा, यह सितार इसके पिता का है। इसके पिता सितार के गुणी थे। इसको यह कला अपने बाप की विरासत में मिली है। जब यह बजाती है तो इसके पिता की तस्वीर मेरी आँखों के सामने नाचने लगती है।—आखिर वे भी क्या दिन थे!' माला की माँ की आँखें भर आईं।

'हाँ, माताजी, मैं कल्पना कर सकता हूँ कि जिसकी बेटी ऐसी कलाकार है, वह खुद कितना बड़ा कलाकार होगा। सच कहता हूँ—आपने अपनी बेटियों को बड़ी सुन्दर शिक्षा दी है। पढ़ना-लिखना, गायन-वादन सबमें निपुण—' राज ने कहा।

'हाँ, बेटा, यही तो मेरे धन हैं। इन्हीं को देखकर तो मैं जीती हूँ। लता के पिता जब से उठ गए मेरा जी बैठ गया। यदि ये दोनों न रहतीं तो मैं जाने कब की गंगा की गोद में

सो गई होती। मगर ममता के इन दो चिरागों को देखकर मैं अपना दुख भूली रहती हूँ। यह तो स्कूल की टीचरी मिल गई कि दोनों पढ़-लिख रही हैं और घर का भी खर्च निकल आता है—वरना······।'

माला की माँ के ललाट पर चिन्ता की रेखाएँ खिंच आईं तो राज ने उस गम्भीर वातावरण को भंग करते हुए कहा—'माताजी, आप कुछ चिन्ता न करें। भला जिन्हें ऐसी गुणवन्ती बेटियाँ हों उन्हें क्या चिन्ता! ······ चलिए, आज शाम को आपको बाबा विश्वनाथ के दर्शन कराता हूँ।'

'बड़ा पुण्य होगा बेटा! चलो, बहुत दिनों से जाने को सोच रही थी।'

'तो राज, मुझे आज घर जाने दो। होस्टल बन्द हो गया'—अजीत ने कहा।

'तो मेरे घर चले आओ। वाह! इतनी जल्दी तुमको जाने की इजाज़त कैसे दे दी जाय? क्यों माला! क्या ख्याल है?'

'हाँ, हाँ, बिल्कुल ठीक है। अभी घर जाने की जल्दी क्या पड़ी है?'

'वाह!'

'वाह क्या, राज बाबू अभी आपको घर जाने की इजाज़त न देंगे।'—लता ने भी ज़ोर भर दिया।

अजीत को कुछ ठीक-ठीक समझ में नहीं आ रहा है कि यह बात उसके मन की हो रही है या बे-मन की।

बाबा विश्वनाथ के दर्शन कर जब घाट की ओर बढ़े तो सन्ध्या का शान्त वातावरण गंगा के कलेवर को घेर चुका था। राज का जी अभी घर लौटने को न था, इसलिए नौका पर घूमने का प्रस्ताव उसने सभी के सम्मुख रखा। गर्मी के दिनों में शहरी उमस से दूर गंगा में नौका-विहार करना भला किसे न अपनी ओर खींच ले! सभी झट राज़ी हो गए। फिर राज अपने एक मित्र की खूब सजी नौका पर सबको बिठाकर गंगा की शान्त धारा पर नौका-विहार को निकल गया।

घाट छोड़ते ही गंगा पर बसी हुई महानगरी काशी का रंग-बिरंगा दृश्य नज़र आने लगा। कुछ तो घाट के किनारे रंगरेलियाँ मना रहे हैं तो कुछ इहलोक-लीला संवरण कर सजी हुई चिता पर आराम से सो गए हैं। मन्दिर की शंखध्वनि तथा मस्जिद से उठता अजान दोनों रह-रहकर सुनाई पड़ जाते हैं। राग और विराग से मिश्रित यह नगरी दूर से कुछ और

ही दिखती है। कभी-कभी बगल से एक बजरा गुजर जाता है। आगन्तुकों को देखकर उसमें बैठे युगल-जोड़ी संभलकर बैठ जाते हैं। सारा वातावरण शान्त है—स्थिर। हवा भी स्थिर है।

फिर राज ने छेड़ा—'इतनी उमस क्यों है? हवे में भी थिरता है और आप लोग भी मौन बैठे इस उमस को और भी बढ़ा रहे हैं। कुछ बातें हों—कुछ क़हक़हे लगें—क्यों लता जी?'

'हाँ, आपका ख्याल तो अच्छा है। कल माला ने मनलिस को बाग़-बाग़ कर दिया, आज आप......'

'वाह, कहाँ माला और कहाँ मैं—क्या पिद्दी, क्या पिद्दी का शोरबा! मेरे गले में वह करामात—वह जादू कहाँ!'

'वाह, आप दोनों ने तो मिलकर माला को आकाश पर चढ़ा दिया। ऐसी तारीफ़ उसकी होगी तो वह रेयाज़ छोड़ देगी और अपने को उस्ताद समझने लगेगी। उसमें प्रतिभा चाहे जो हो, मगर बिना रेयाज़ के वह अधकचरी ही रह जाएगी।'

माला ने भी शर्माते हुए कहा—'हाँ, मेरी इतनी प्रशंसा नहीं होनी चाहिए वरना मैं कहीं की न रहूँगी। संगीत-कला का किला बड़ा विशाल है—मैं तो अभी उसकी देहरी पर ही हूँ।'

'तो क्या आप समझती हैं कि मैं भी संगीत-कला में आपके सदृश प्रवीण हूँ? ना भाई, ना—'

'मगर मिज़ाज से तो आप बड़े शौक़ीन मालूम पड़ते हैं—गाना ज़रूर आता होगा'—लता ने कहा।

'बनो नहीं। तुम तो ख़ासे अच्छे गा लेते हो। छेड़ो वह तराना'—अजीत ने उसकी पोल खोल दी।

सभी ठहाका मारकर हँस पड़े।

'वाह, तो आप भी फ़रमाइश कर रहे हैं?'

'फ़रमाइश नहीं, यह ऑर्डर है।'

'तो हुज़ूर का हुक्म सर-आँखों पर·········कहिए, क्या सुनाऊँ?'

'वही···।'

शर्म और संकोच से भरे राज ने दूर कोने में बैठी माताजी की ओर दृष्टि दौड़ाई। उन्होंने हँसते-हँसते कहा—'गा बेटा, गा। मैं भी सुनूँगी।'

'मगर माताजी, आपके सुनने लायक भजन तो मुझे नहीं आता। मैं तो कुछ चलती-फिरती·······'

'अरे, कुछ भी गा—गा तो सही!'

राज ने छेड़ दिया—

'तुझे क्या सुनाऊँ मैं दिलरुबा
तेरे सामने मेरा हाल है
तेरी एक निगाह की बात है
मेरी जिन्दगी का सवाल है...;
मेरी हर खुशी तेरे दम से है
मेरी जिन्दगी तेरे दम से है
मेरे दिल जिगर में समा भी जा
रहे क्यूँ नजर का भी फ़ासला...
कि तेरे बग़ैर तो जान जा
मुझे जिन्दगी भी मुहाल है....'

राज के गले में एक मीठा दर्द है। वह संगीत-शास्त्र से परिचित तो नहीं मगर उसके गले में ऐसा मोहन-मंत्र है कि सभी उस पर रीझने लगते हैं। काश, वह संगीत-शास्त्र में निपुण होता तो आज एक चोटी का कलाकार होता।

झिलमिल सन्ध्या का शान्त वातावरण, गंगा की मन्द धार पर बहती एक नौका, दूर किनारे पर बसा कोलाहल-भरा एक विशाल शहर, पार्श्व से गुजरती हुई नौकाएँ और इस वातावरण में गूँजती हुई राज के गले की स्वर-माधुरी सारे वातावरण में एक मस्ती बिखेर रही है। लता उसके चेहरे पर

उभरती हुई भावनाओं को बड़ी ललचाई दृष्टि से देख रही है और माला का अंग-अंग स्वर के लय पर थिरक रहा है। अजीत की आँखें मानों दूर किनारे शून्यता में कुछ ढूँढ रही हैं और मन में तो नाच रही है उस ग़ज़ल की एक-एक कड़ी।

जब गाना ख़त्म हुआ तो लता ने तालियाँ बजाईं और माला ने 'वाह-वाह' की झड़ी लगा दी।

'राज बाबू! आप तो छिपे-रुस्तम निकले! यह गला, यह स्वर लहरी! —मैं तो बाग़-बाग़ हो गई।' —लता की वाणी में एक मधुर विस्मय था।

'शुक्रिया, आपको मेरी चीज़ पसन्द पड़ी,—बस, मैं लाखों में हूँ।'—राज ने बड़ी आजिजी ज़ाहिर की।

'आपके गले में एक अनोखापन है, एक दर्द है जो मुझे और कहीं न मिला।······आपकी आवाज़ में एक वेदना बसी है जो बरबस श्रोताओं को खींच लेती है अपनी ओर। मुझे तो इस ग़ज़ल की कोई भी कड़ी याद नहीं······मैं तो आपकी स्वर-लहरी में इस तरह डूब-उतरा रही थी कि मुझे पता ही नहीं कि आपने क्या गाया, कैसे गाया—आपकी स्वर-सुरा का पान कर उन्मादिनी-सी मैं जाने क्या खोज रही थी, अपने अन्दर एक अजीब बेचैनी, एक नई अनुभूति पा रही

थी। पुरुष के स्वर में भी इतना माधुर्य हो सकता है—यह मुझे आज जान पड़ा······हाँ, मुझे जाने क्या हो गया है, कैसी प्यास उपट आई है कि चाहती हूं कि आपकी स्वर-सुधा का फिर पान करूँ—बार-बार पान करूँ—वाह! क्या खूब!—बस, जादू है—जादू।'—लता इतनी सारी बातें एक सुर में कह गई।

माला सोचती रही कि इन बातों को जीजी ने आज इस तरह क्यों कहा······कुछ खोई-खोई-सी क्यों कहा—कभी सुदूर गंगा के किनारे सुनसान में कुछ खोजती हुई और कभी राज बाबू को ललचाती दृष्टि से देखती हुई? गजल में उनकी आवाज में जरूर बड़ा आकर्षण था मगर जीजी ऐसी भावभंगी क्यों करने लगी, कुछ अजीब-सी?

'राज बाबू! अब जरा गजल की कड़ी एक बार फिर तो दुहरा दीजिए—हाँ, गाकर नहीं तो यों ही सही, मैं भी सुनूँ आखिर आपने क्या गाया—क्या सुनाया!'

इतना कहकर लता बड़ी दर्दभरी दृष्टि से उसे देखने लगी।

राज मुस्कराते हुए, कुछ भाव दिखाते हुए गजल की कड़ी उसे सुनाने लगा।

'वाह ! लाख-लाख रुपये की पंक्तियाँ हैं। कहाँ मिलीं आपको ? किसकी बनाई हुई हैं ?......'

'मेरे पिता उर्दूदाँ थे। उन्हीं की कॉपी में मुझे यह गजल मिली थी। पढ़ते ही एक-एक शब्द मेरे दिल में चुभ गए जो आज मोतियों के दाने बन आपके सामने बिखर पड़े।'

'बिखर नहीं पड़े, गुँथ कर मेरे गले का हार बन गए !' —लता ने आँखों में आँखें डाल कर कहा।

'धन्यवाद ! मगर माला के सामने आप मेरी प्रशंसा न करें। कहाँ वह और कहाँ मैं !' —राज जोर से हँस पड़ा और माला भी खिलखिला पड़ी।

'आप समझे नहीं राज बाबू, माला कली है और आप फूल। उसमें कोमलता है पर अभी कोई सौरभ नहीं आया। मगर आपकी सुरभि तो गंगा के सारे कछार में फैल गई है, मेरे तन-मन में व्याप गई है।'

'यह तो अपनी-अपनी नजर है, मगर मैं अभी भी माला को अपना गुरु ही मानता हूँ।'

'भाई राज, माला के स्वर के विषय में क्या कहना ! वह तो स्वरमयी है। मगर आज तुम भी बड़े 'फॉर्म' में रहे। यह ग़ज़ल तुमसे मैंने कई बार सुनी है परन्तु आज तुमने जो समाँ बाँध दिया—आकाश से सितारे तोड़ लाए, वह मुझे

कभी भी देखने को न मिला। कमाल कर दिया तुमने !'—अजीत ने भी हँसते-हँसते कहा।

'ऐलो, गप्पें लड़ाते-लड़ाते हम घाट पर भी पहुँच गए। कुछ पता ही न चला कि इतना समय कैसे गुजर गया।' राज ने कहा।

फिर सभी घाट पर उतर गए। लता को लगा जैसे गंधर्व-लोक से छूटकर एकाएक ऊसर धरती पर आ गिरी।

अजीत जब होस्टल पहुँचा तो मँगरू ने एक तार दिया और कहा—'बाबू, बहुत देर से आपकी आस देख रहा था। आपके जाते ही तार आया था।

अजीत ने झट तार खोला और देखा कि भाई का तार है। माँ बीमार है—झट चले आओ।

तार पढ़ते ही माँ की विमल मूर्त्ति उसकी आँखों के सामने नाचने लगी। माँ घबड़ा कर बीमार पड़ गई। ओह, कितनी ममता है उसमें! बार-बार कहती है 'अब तुम्हें ही देखकर मैं जीती हूँ। बस, एक आस और है। तुम्हें बहू के खूँट में बाँध कर कूच कर जाऊँ इस संसार से।' जब मैं घर छोड़ने लगता हूँ तो वह विह्वल हो जाती है और उसी दिन से मेरे लौटने के दिन गिनने लगती है। एक दिन भी देर करके

पहुँचता हूँ तो वह परेशान हो जाती है। और इधर इतने दिन गुजर गए, खबर भी न भेजी कि क्यों रुक गया।......
नहीं......नहीं......आज चल ही देना है। माला की ममता इतने दिनों मुझे रोके रही—इस माया की डोरी को काटे बिना अब खैर नहीं। माला...माला...उस किशोरी के हृदय में मेरे लिए इतनी ममता......और मेरे हृदय में भी...... । मैं बिना कहे चल दूँ तो माला कलप-कलप कर रह जाएगी। उसे बता देना जरूरी है।

. .

उसकी नजर घड़ी पर पड़ी। ओह! रात की गाड़ी तो निकल चुकी। अब कल आठ बजे मिलेगी। तो अजीत, आज रात यहीं विश्राम करो। कल सुबह माला से विदा ले महानगरी काशी से विदाई ले लेनी है।

होस्टल की बिजली-बत्ती का कनेक्शन कट चुका था। घुप-घुप अँधेरी रात में एक घोर एकाकीपन, एक अजब भयानक जाल ने उसे घेर लिया। इस भयानक रात्रि में उसकी नींद हराम हो गई। आँखें खोलता तो काली कुलकुल रात और आँखें मूँदता तो माँ की सूनी-सूनी आँखें तथा माला का मासूम चेहरा एक दूसरे से टकरा कर उसे बेचैन कर देते। सुबह की सुफेदी देखने को वह अक्सर आँखें

खोलता मगर तारों की ज्योति के सिवा कुछ भी नहीं दिखता। यदि मँगरू बगल में सोया खर्राटे न लेता रहता तो वह कब न होस्टल से डर कर भाग गया होता। बस, इसी उमस और उधेड़बुन में रात कट गई।

भोर की कुहेलिका ने अजीत के अन्तर की आग को और भी उकसा दिया। जाने कौन-सी मोह-माया उसे काशी छोड़कर जाने देना नहीं चाहती। एक अजीब कशमकश है। जाने और न जाने की भावना के बीच वह उबचुब हो रहा है। लगता है कोई 'अदृश्य' शक्ति उसे बरबस खींचे लिए जा रही है। काश वह शक्ति क्षीण हो जाती और उसका प्रस्थान टल जाता!

अजीत को इतने तड़के आते देखकर माला को जरा आश्चर्य हुआ।

'क्यों, ये आँखें लाल क्यों हैं? रात में सोए नहीं क्या?' .... माला ने जिज्ञासा दिखाई।

'माला, मैं अभी जा रहा हूँ। भाई का तार आया है। माँ बीमार है। मुझे झट बुलाया है।'—अजीत की आवाज बेजान सी है।

'गाड़ी कितने बजे है ?'

'आठ बजे—अभी ।'

'और दूसरी ?'

'रात में नौ बजे ।'

'तो रात की गाड़ी से जाना होगा ।'—उसकी वाणी में अर्चना-प्रार्थना नहीं—एक 'कमांड' है ।

'मगर, माँ........'

'अजीत बाबू, बारह घंटे में आखिर क्या हो जाएगा ! घर पर तो सब लोग हैं ही । इतना सुबह बिना नाश्ता किए मैं आपको जाने तो दूँगी नहीं । नाश्ता बनाते-बनाते गाड़ी छूट ही जाएगी, इसलिए इतमीनान से रात में जाइए ।'

और माता के इस इसरार या 'कमांड' को अजीत टाल न सका ।

'आप बैठिए मेरे कमरे में—ये लीजिए आज के अखबार । पका नाश्ता बनाकर अभी लाती हूँ ।'

'इतनी जल्दी क्यों ? लता जी को भी तैयार हो जाने दो । फिर साथ ही साथ— हाँ-हाँ, ताँगेवाले को पैसे तो······ ।'

'पैसे मैंने दे दिए । आपका सामान भी ऊपर रखवा लिया है'—लता ने आँखें मटकाते हुए कहा ।

'इतनी तकल्लुफ़ क्यों ! मैं तो पैसे देने जा ही रहा था। लीजिए, आपलोगों ने मेरा सामान उतरवा कर मुझे पूरा कैदी बना दिया। यह अच्छी साजिश रही।'

'अजीत बाबू! आज दिन भर यहीं रह जाइए—कोई पानी में तो भींगते नहीं—यह घर भी अपना ही समझिए।'—लता ने कहा।

'जैसी आपकी मर्जी—'

अजीत बंडी उतारता वहीं पलंग पर बैठ गया।

चौके में जब माला गई तो आज उसने एक नई उमंग, एक नई स्फूर्ति का अनुभव किया। माताजी को भी आश्चर्य हुआ कि जो माला लाख बुलाने पर चौके में नहीं आती वह आज इतनी आसानी से कैसे चली आई! झट-पट पूरियाँ बेलकर छान लीं, एक सब्जी भी बना डाली और और नीचे चाटवाली दूकान से गरम-गरम जलेबियाँ लिए जब अजीत के पास पहुँची तो लता भी आश्चर्य-चकित हो गई।

'वाह माला! तूने तो आज बड़ी फुर्ती दिखाई! लीजिए अजीत बाबू, आज आपके चलते मुझे भी इतना सुबह नाश्ता मिल गया!'

अजीत को नाश्ता कराकर माला को बड़ा आनन्द आया। एक नई अनुभूति, एक नई मस्ती उसके सारे तन में छा गई।

बहुत देर तक खुशगप्पियाँ चलती रहीं। फिर माला ने जिद करके अजीत का बक्स खोला और सब कपड़े सहेजने लगी।

'हुंह, आपको कपड़े भी रखने नहीं आते! जैसे-तैसे सब भर दिए हैं।'

'मैंने नहीं रखे हैं—मँगरू ने ठूँस दिए हैं।'

'वाह, दूसरों के माथे खेलना कोई आपसे सीखे! उफ़, कहीं तेल की शीशी ढुलक रही है तो कहीं ब्लेड बिखरे पड़े हैं। अजीब तमाशा है:……छीः-छीः! ये गंजियाँ इतनी गन्दी क्यों हैं? इन्हें ज़रा कचार तो देते। राम! राम! लाइए मैं अभी साफ़ कर दूँ।'

माला ने अजीत के बक्स की पूरी सफ़ाई की। होल्डऑल को खुलवाकर फिर से ठीक से बँधवाया। रात में बर्थ पर बिछाकर सोने के लिए एक चादर और तकिया बाहर निकाल कर रख लिया।

दिनभर माला अजीत के इर्द-गिर्द घिर्नी की तरह नाचती रही। बक्स और होल्डऑल सहेजना खत्म होता तो उसके नहाने का प्रबन्ध होता। दिन का खाना समाप्त होता तो फिर साथ बैठकर ताश या कैरम खेलने का प्रोग्राम चलता।

ताश के खेल के दौरान में कभी वह अजीत को झिड़क देती तो कभी खुद झिड़की सुन लेती। बीच-बीच में लता की फटकार भी पड़ती—'बदतमीज़ कहीं की! अजीत बाबू के साथ बेईमानी करती है?—तुझे शर्म नहीं आती......?'

और तब उसकी आँखों में आँसू छलछला उठते पर अजीत की आँखें उन्हें देख न लें—वह झट अपने को सम्हाल लेती। अजीत जब देखता कि खेल का मज़ा किरकिरा हो रहा है तो कोई रंगीन लतीफ़ा सुनाकर सबको हँसा देता और फिर वही हँसी-खुशी की लहर सबके चेहरे पर दौड़ जाती।

लू की गर्मी शान्त होने को आई तो माताजी ने कहा—'बेटी, नीचे की दूकान से लस्सी तो मँगा लो। आज बड़ी गर्मी पड़ी है। तुम लोगों ने दिन भर शोर मचाया। एक घण्टे भी तो सो लेते।'

सन्ध्या समय माला ने अजीत से कहा—'चलिए, मेरे लिए कुछ अच्छी-अच्छी किताबें खरीदवा दीजिए। इतनी लम्बी छुट्टी तो काटे न कटेगी—एक आपका साथ था तो आप भी चल दिए—आखिर कितनी देर सितार से मन बहलाऊँगी!'

'और जब मुझसे जान-पहचान न हुई थी तब?'

'तब की बात और थी, अब की और। तब मुझे किसी से गप्पें लड़ाने की लत भी तो नहीं लगी थी!'

'मगर यह बड़ी बुरी लत है।'

'ऊँह—बला से—हो बुरी……?'

अजीत ने प्रेमचन्द तथा शरत् के उपन्यास माला के लिए खरीद दिए।

'माला! तुमने शरत् को अभी तक नहीं जाना है। वही हमारा सबसे प्रिय कथाकार है। प्रेमचन्द के साथ-साथ उसकी लेखनी का भी रसास्वादन करो। नारी-जाति के चरित्र-चित्रण में तो कोई भी उसके सामने ठहरने से रहा।'

'तो लाइए, 'शेष प्रश्न' से ही शुरू करें। वही न आपका 'फेवरिट' है! सुना है, कमल का चरित्र-चित्रण कमाल का है।'

'हाँ-हाँ, तुम्हारे मन को बहुत भाएगा। तुम उम्र की कच्ची जो हो, मगर तुम्हारा मानसिक विकास बहुत ज्यादा हुआ है। यही तुम्हारी विलक्षणता है।'

'वाह! तो मेरा चरित्र-चित्रण आप करेंगे क्या?'

'नहीं-नहीं।'

फिर दोनों हँस पड़े।

अजीत का प्रस्थान माला के लिए एक महान् अनुष्ठान के जैसा था। दिन भर इसी अनुष्ठान की तैयारी में लगी रही

और जब वह प्रस्थान कर चुका तो उसे ऐसी रिक्तता लगी कि वह कुछ घड़ी के लिए शून्य-सी हो गई। घर का कोना-कोना उसे काटने दौड़ने लगा। सारे वातावरण में एक उदासी—एक पस्ती छा गई। सारे बदन में मीठा-मीठा दर्द हो आया और एक तन्द्रा में वह ऐसी सोई कि सुबह धूप निकलने पर भी बिना शोर मचाए न जगी।

'मैं जानता था कि माँ बीमार न होगी — सिर्फ मुझे बुलाने को भैया ने तार दे दिया होगा।'— अजीत ने माँ के पैर छूते हुए कहा।

'ओहो, आ गए बेटा! युग-युग जियो मेरे प्राण! युग-युग जियो मेरे लाल!'—माँ ने तरकारी काटना छोड़कर उसे गले से लगा लिया।

'पहले यह तो बताओ, तुम्हारी तबीयत कैसी है?'

'जैसी बराबर रहती है वैसी ही आज भी है। तुमने आने में बड़ी देर कर दी और मुझे धड़का होने लगा। दमा तो मुझे है ही—उधर दवा से दबा था, कमज़ोरी पाकर वह भी उभर आया। एक दिन तो जैसे साँस ही टँग गई एकबारगी। किसी-किसी तरह.......'

'दोस्तों ने रोक लिया नहीं तो मैं कब का यहाँ आ जाता। हाँ, वही राज—तुम तो उसके यहाँ ठहर ही चुकी हो; जब

गंगा-स्नान को काशी गई थी, तुम्हें वहीं ठहराया था। मगर तुम नाहक इतना घबड़ा जाती हो। मैं तो भला-चंगा था।'

'माँ का हृदय तुम क्या जानो बेटा! एक दिन भी तुम्हारे आने में देर होती है तो मेरा दिल धड़कने लगता है। अब बहू के हाथ तुम्हें सौंप दूँगी तो चैन की बंशी बजाऊँगी। वही तुम्हारी देखभाल करेगी।'

'मैं खासा अच्छा हूँ—मुझे किसी गार्जियन की जरूरत नहीं—विवाह······उहूँ····बहू····धत्······'

'धत्-वत् नहीं, मैंने तुम्हारे लिए एक बड़ी सुन्दर बहू ढूँढ रखी है—फूल-सी सुन्दर—समझे?'

'क्या तमाशा खड़ा कर रखा है तुमने—जब सुनो तो वही बहू-बहू। दिन-रात उसी की माला जपा करती हैं।—लाओ, कुछ, खाने को भी तो दो। रात भर का भूखा हूँ।'

"बेटा, तार आते ही तुम्हारे लिए पकवान बनाने बैठ गई थी। देखो, आलमारी में तुम्हारे लिए इत्ती-सारी चीजें बना रखी हैं। तुम्हें तो बस मीठा चाहिए—तो लो, यहाँ मिठाई की ही भरमार है।"

'·················'

'तुम्हें तो ऐसी बहू चाहिए जो तुम्हें दोनों शाम मिठाइयाँ

बनाकर खिलाती रहे। तुम्हारी बहू को सब मिठाइयाँ बनाना सिखा दूँगी।'

'माँ, तुम्हें भी यह क्या धुन सवार है कि अभी से अपने बेटे के गले बहू का ढोल मढ़ दो। अरे, तुम्हारा अजीत पढ़-लिख कर सयाना हो जाय, कमाने-धमाने लगे तो शादी के लिए तो अभी तमाम उम्र पड़ी हुई है। अभी से.......'

'तू भी क्या बात करता है बेटा! समय पर तो तू कमाएगा ही। बहू को घर का बोझ क्यों समझने लगा? जैसे सब हैं —वैसे वह भी रहेगी।'

'ना माँ, ना। भाई के सर पर कितनी जिम्मेवारी मैं दूँ? सौ रुपए माहवार तो मैं ही उनसे झीट लेता हूँ। फिर अब कितना.......।'

इसी बीच मुंशी रामलाल भी वहाँ चले आए। अजीत ने पैर छूकर भाई को प्रणाम किया। भाई ने भाई को गले लगा लिया। फिर बातें होने लगीं—'अजीत! माँ एक दिन बहुत बीमार हो गई थी। दमा का दौरा तो पहले भी हुआ है पर इस बार बड़ा भीषण था। मैंने घबड़ा कर तुम्हें बुलाने के लिए तार भेज दिया। मगर इस बार तो तुमने बड़ी देर लगा दी?'

'हाँ, राज ने रोक लिया था। रोज़ आने का प्रोग्राम बनता था और टल जाता था।'

'और मेरा तार न मिलता तब तो अभी कितने दिन...' भाई ने ज़रा व्यंग्य की मुद्रा में कहा।

'नहीं भैया, ऐसी कोई बात नहीं थी—मैं तो आजकल में ही जरूर चल देता। ....हाँ, भाभी मैके से कब आ रही हैं?'

'उनका भी तुम्हारा ही हाल है। शाहजहाँपुर से बराबर खबर आती है कि आज सवारी उठ रही है तो कल। अब देखो.......'

'आज ही मैं भाभी को ख़त लिखता हूँ कि मैं आ गया—वह जल्द चली आएँ। रानी और मुन्ना बिना घर सूना लग रहा है।'

'देखो—शायद तुम्हारी कोशिश लग जाय।'

कुछ देर यों ही इधर-उधर की बातें होती रहीं। फिर रामलाल ने कहा—'अच्छा, जाओ, अब आराम करो—रात भर के जगे हो। तुम्हारी आँखें थकी लगती हैं।'

अजीत जब नहा-धोकर स्थिर हो सोने चला गया तो राम लाल ने माँ से पूछा—'क्यों माँ, सहारनपुरवालों को बुलवा

लूँ ? अजीत के दिमाग़ की क्या हालत है ? है ठीक-ठिकाने ? रोज़ उनका तार आता है कि जवाब कब दे रहे हैं। मैं तो बड़े संकट में पड़ गया हूँ। अजीत की ही राह देख रहा था।'

'बेटा, अभी तो अजीत पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देता है। मैं तो समझती हूँ कि बिना तुम्हारी बहू के आए यह मामला ठिकाने न लगेगा।'

'तो ठीक है, उसे आ जाने दो।'

अजीत का पत्र पाते ही रामलाल की बहू दौड़ी चली आई। आती भी क्यों नहीं, अपने नजदीकी रिश्तेदार की बेटी किरण से अजीत की शादी जो उसे करानी है!

'क्यों भाभी! बाजी लगा रखी थी क्या कि जब मैं आ जाऊँ तभी आप भी टपकेंगी?'

'नहीं छोटे लाला, इस बार मैके में एक मिशन पर गई थी।'

'ओ, अब समझा!.......तो फिर कहिए, क्या हाल है उस मिशन का? हो गया पूरा?'

'मेरा मिशन भी कभी अधूरा छूटता है?'—भाभी ने भाभी की आँखों से देवर को देखकर कहा। फिर मुस्कान को छिपाती, मुख-मुद्रा को कुछ गम्भीर बनाती हुई बोली—

'हाँ, वहाँ का मिशन तो पूरा हो गया, अब यहाँ का आपके भरोसे है—'

'मतलब ?'

'मतलब''मतलब तो यह कि आपकी मंजूरी मिल जाय और शहनाई बज उठे !'

'ओह ! आप लोगों ने यह क्या षड्यन्त्र रच रखा है ? सबकी जबान पर एक ही बात, सबके मन को एक ही धुन—शादी जल्द-से-जल्द हो जाय ! आखिर क्या ऐसी बात आ गई है कि जब से आया हूँ देखता हूँ कि घर भर इसी को लेकर परीशान है। मैं तो आपलोगों का तमाशा देखकर भौंचक हो गया हूँ। माँ कहती है कि शादी कर लो, भैया कहते हैं कि भाभी के रिश्तेदार की जानी-सुनी लड़की है—जरूर शादी कर लो और आपने तो बस, सारी 'मिशनरी जील' ही लगा दी है !'

'और कोई बात नहीं छोटे लाला, माँ जी की तबीयत ठीक नहीं रहती है—उनकी आखिरी ख्वाहिश है कि आपकी शादी उनकी जिन्दगी में हो जाय—अब इसे अंजाम देना तो बस आपके हाथ में है।'

'..................।'

'और ऐसी सुन्दर बहू भी फिर न मिलेगी। लाख में एक

है। विधाता के अपने हाथ की बनाई हुई। मक्खन-सा रंग, कमल-सा कोमल और मिजाज ऐसा कि जिस साँचे में ढाल दो—ढल जाय।'

'......................।'

'लाला! ऐसी बहू अगर उठ गई तो फिर ढूँढ़ने पर भी मिलने की नहीं। आखिर बेटीवाले भी कितने दिनों तक इन्तजार करेंगे?'

'तो आपके कहने का मतलब यह कि ऐसी नायाब नेमत दुनिया में और कहीं मयस्सर नहीं और इसे छोड़कर जिन्दगी भर पछताना ही रखा है—क्यों?'

अजीत से ऐसे उपेक्षा-भरे उत्तर की आशा भाभी को न थी। उसे लगा, उसके ताश के महल पर किसी ने कंकड़ फेंक दिया। अपनी तिलमिलाहट को ताने-भरे मजाक में लपेट कर बोली—

'तो उलझ गई है आँख किसी और जगह क्या?....मगर लाला! जवानी की आँखें अक्सर धोखा खा जाती हैं—उन्हें अनुभव का अवसर ही कहाँ मिला! अनुभवी आँखें जिन्हें खोज लाती हैं उनसे धोखे का डर नहीं रहता। आपकी चीज में सूरत जो हो—सीरत न होगी।'

'अरे भाभी, सूरत तो कुछ यों ही रहेगी—मगर सीरत पर तो आप रीझ जाएँगी।'

'लाला, बातें न बनाइए। आप मुझे बातों के जाल में उलझा रहे हैं।'

'नहीं भाभी, मैं सच कहता हूँ।'

'नहीं-नहीं, झूठ।'

भाभी सच नहीं सुनना चाहती हैं। उन्हें सच को झूठ समझने में ही सन्तोष है।

अजीत को फँसाने के लिए पहले रेशमी डोर की बंशी फेंकी गई, तब जाल डाला गया, फिर महाजाल पड़ा; मगर वह फँसा नहीं, किसी तरह तैरता निकल भागा। हाँ, भाग तो वह गया मगर पर मारते-मारते बल पड़ गए और थकान की पस्ती कुछ ऐसी छा गई कि अगर इस साल शादी का लग्न मई के अन्त में ही समाप्त न हो जाता तो शायद भाभी के चकोह में दुबारे पड़कर तो वह निकल न पाता। इधर भाभी ने हार नहीं मानी। कोई बात नहीं, इस साल बाजी खिच रही—रहे! अगले साल तो वह चूकने से रही। फिर तो गोटी लाल होकर रहेगी। देखें, बच्चू कहाँ भागकर जाते हैं!

✣

अजीत के घर चले जाने के बाद से माला की हालत अजीब हो गई है। बाहर-बाहर से उसे पता नहीं चलता कि आखिर हो क्या गया है उसे, पर भीतर टटोलती तो पाती कि जरूर कुछ हो गया है—कुछ खो गया है अन्दर की सतह से। उसकी वह स्फूर्ति, वह हँसी-खुशी जाने कहाँ उड़ गई एकबारगी और वह कुछ गम्भीर, कुछ अनमनी-सी हो गई है। कभी चुप्पी साध लेती तो घण्टों बोलने का नाम नहीं लेती और कभी सितार के तारों से उलझ पड़ती और उनसे ठीक-ठीक बोल नहीं निकल पाते तो सितार ही पटक देती। एक दिन तो इतने जोर से पटक दिया कि फूटते-फूटते बचा।

आखिर लता ने एक दिन पूछा—'क्यों माला, जी अच्छा नहीं है क्या?'

'नहीं, ठीक तो है।'

'पर तुम्हारा रंग-रवैया तो ठीक नहीं लगता। यह उदी—

उड़ी-सी क्यों रहती हो? ऐसी झल्लाहट और लापरवाही तो तुम्हारे स्वभाव में कभी रही नहीं। उस दिन सितार ऐसा पटक दिया कि फूटते-फूटते बचा। आज रविवार था और तुमने माँ के सभी पकवानों में नमक डाल दिया। बिचारी भूखी रह गई।'

'माफ़ करना दीदी, बड़ी गलती हो गई। बात यह है कि इधर शरत् की किताबों में मैं बेतरह खो गई हूँ, शायद उसी का असर हो।'

'यह कौन-सी नई बात है? किताबों में तो तुम बराबर ही खोती रही; मगर तुम्हारी बुद्धि तो ऐसी कभी खो न गई?'

उसने दीदी की सारी दलीलों को हँसकर टाल दिया।

माँ ने लता से कहा—'माला अब बच्ची नहीं रही, बड़ी हो रही है। वह बाल-सुलभ भोलापन कहाँ भाग गया—राम जाने। अब तो चुप-चुप बड़ी गम्भीर-सी रहने लगी है।' फिर माला से कहने लगी—'बेटी, तू अभी बच्ची है—इतनी सयानी अपने को कबसे समझने लगी? देख, गुड़िया खेलना तूने एकदम छोड़ दिया। मैं तो शादी के साल तक गुड़िया खेलती रही—गुड्डे-गुड़ियों का व्याह रचाती रही और तू इसी उम्र से बूढ़ी जैसी किताबों में आँख गड़ाए रहती है। स्कूल खुलेगा तो पढ़ना। छुट्टियों में तो खूब खेल ले बेटी!'

भागते किनारे

'माँ, मैं अभी इसकी किताब छीनता हूँ। बड़ी पढ़नेवाली बनी है! मालूम होता है यही एक पढ़ाकू है और हम सब खेलाड़ी।' कहते हुए राज ने झपट कर माला के हाथों से किताबें छीन लीं। वह जाने कबसे खड़ा चुप-चुप बातें सुन रहा था और मौक़ा पाते ही झपट पड़ा। सभी चौंक उठे। फिर ठहाका मार कर हँस पड़े।

माला मुँह बनाने लगी—'इत्ता ज़ोर से झपट्टा मारा कि दो पन्ने फट भी गए—जाइए आप! बड़े आए हैं किताब छीननेवाले! धत्!'

राज ने किताब को दूसरे कमरे में छिपा दिया और कहा—'आप दोनों झट तैयार हो जाइए और चलिए मेरे यहाँ। मैं मोटर लाया हूँ। मेरी माँ से आज आप दोनों को मिलना है। बहुत दिनों से आप दोनों से मिलने को वह लालायित है। हमारे घर में बस एक ही प्राणी है और वह है मेरी माँ! उठो-उठो माला, झट तैयार हो जाओ। लता जी तो मालूम होता है नहा-धोकर जाने कबसे तैयार बैठी हैं।'

राज ने चाहा हाथ पकड़ उसे खींचकर उठा दे मगर उसके पहले ही माला उठ खड़ी हुई और 'नहाने जाती हूँ बाबा, जाती हूँ' कहती गुसलखाने में घुस गई।

लता ने देखा—राज बाबू का बनारसी गोरा रंग, देह पर चिकन का चमकता हुआ बंगला कुरता, दूध-सी धुली हुई सैनकुमा के नागपुर कोर की धोती, गले में सोने की एक पतली लड़ी और कलाई में सोने की कीमती घड़ी, मुँह पर पान के बीड़े की ललाई और सारे वातावरण में मादकता बिखेरती हुई सन्दल के इत्र की खुशबू।

हँस कर बोली—'राज बाबू! आज बड़े सवेरे बन-ठन के निकले हैं आप!—कहिए, क्या बात है?'

राज ने छूटते ही कहा—'बात क्या है! राज तो मन का राजा है! उसके मन में तो सदा बहार ही रहता है!—है कि नहीं?'

'हाँ-हाँ, क्यों नहीं? मुबारक हो आपका सदाबहार!'

'लता जी! मेरे पिता बचपन में ही मुझे एक विशाल धन का उत्तराधिकारी बनाकर चल बसे। मैं अपने माँ-बाप का इकलौता बेटा हूँ। एक बहन भी नहीं। मेरे पिता की मृत्यु के बाद मेरी माँ मेरी संरक्षिका बनी। मुझे पिता का प्यार तो न मिला मगर माँ का दुलार भरपूर मिला और वह आज भी मिल रहा है। मुझे किसी बात की कमी नहीं, चिन्ता नहीं। अध्ययन तो मेरे लिए स्वान्तः सुखाय है। माँ तो कहती हैं कि अब कालिज की पढ़ाई बन्द करो और घर का

काम सँभालो····मैं बूढ़ी हुई—मेरी ज़िन्दगी में सब काम समझ लो, मगर मैं सोचता हूँ जितने दिन मस्ती और बेफिक्री में कट जाएँ—कट जाएँ। यह मौज किसको नसीब है? फिर मुझमें मस्ती न समाई रहे तो किसमें समाएगी? मेरे जीवन में कोई समस्या नहीं, संघर्ष नहीं। बस, यही समझो—उमंगों में भरे दिन हैं—उम्मीदों में बसी रात।'

'अरे! तो अब समझी—आप उम्मीद भी करने लगे, आस भी बाँधने लगे!'

'तो क्या बुरी बात हुई?'

'बात तो बुरी नहीं, पर लत बुरी है।'

'बला से!'

लता-माला जब राज बाबू की हवेली में घुसीं तो उसकी विशालता और लकदक देखकर चकरा गईं। उन्हें पता ही न था कि राज सचमुच इतना धनवान् व्यक्ति है। चकचक फर्श, झाड़-फानूस से जगमग छत। महरियों का हुजूम, नौकरों की क़वायद।

राज की माँ एक अच्छे व्यक्तित्व की महिला हैं, परन्तु इस बुढ़ापे में भी गहनों से लदी हैं। इसी संस्कार में पली हैं जो। उन्हें देखते ही लता के मन में झट आया कि राज ने माँ से ही इतना सुन्दर रंग लिया है।

'आओ बेटी, आओ, तुम दोनों से मिलने को जाने कबसे आस लगी थी। आओ, बैठो—माँ को क्यों नहीं लाई?'

'माँ को तो घर के धन्धों तथा स्कूल से ही फुर्सत नहीं कि बाहर निकले—दिनभर खटती रहती है।'

'तो बिचारी गरीबी के बोझ से दबी हुई है।'

लता और माला दोनों को यह रिमार्क अच्छा न लगा मगर अपने को जब्त कर बैठी रहीं।

'बेटी! विधवा के कन्धों पर जब मर्दों जैसा सब भार आकर पड़ जाता है तो यही हाल होता है। मुझे ही देखो—आंगन से बाहर पैर निकाले महीनों हो जाते हैं। दिन भर दीवान जी जुटे रहते हैं। कभी किसी कागज पर दस्तखत करना है तो कभी रुपयों की गड्डी गिनवाकर तहखानों में रखनी है। पर्व-त्यौहार के दिन तो और आफ़त—दीया जलाकर तहखाने में घुसो और राधा-माधव के सब गहने निकालकर उनका शृङ्गार करो। रात भर सजग भी रहो कि कुछ गायब न हो जाय। उधर चौके में जाकर छप्पनों प्रकार के राग-भोग की तैयारी अलग। लोग-बाग को प्रसाद बाँटते-बाँटते जान जाने की नौबत! और जरा भी गफ़लत हुई तो महरियाँ पूरियाँ अपने साए में चुराकर भाग निकलें। पूजा में मन क्या खाक लगे?

-यह-वह का लगातार ऐसा झमेला है कि दिन-रात के चौबीस घण्टे इसी चक्करदार परीशानी में बीत जाते हैं।'

'माँ, इन्हें बात में ही बझाकर रखोगी या कुछ खिलाओगी भी?'—राज ने माँ की बात की लम्बी डोर बीच में काट दी।

'हाँ-हाँ, ओ बुधिया! ओ पियरिया! अरी, कहाँ चली गई? नाश्ता ला—जल्दी कर।'

बुधिया और पियरिया ने पहले चाँदी की चिलमची में उनका हाथ धुलाया, फिर गंगाजमनी कई तश्तरियाँ लाकर मेज पर रख दीं। घर की बनी सभी चीज़ें बड़ी लज़ीज थीं—घी से चुपड़ी, मसाले से भरी। राज ने बड़े चाव से उन्हें खिलाया और अपने भी लिया। ये बेसन के लड्डू, यह बालाई में बना बादाम का हलवा, यह लवंगलता, तो यह मुक्ताझरी—एक पर एक सामने रखता गया। अभी जाने क्या-क्या उन्हें खिलाता यदि वे पेट भर जाने की शिकायत न करतीं। यह पेट भी जीभ का जन्मजात दुश्मन ही है!

नाश्ता के बाद माँ ने अपनी बड़ी गंगाजमनी पान-दानी मँगाई और बनारसी पान के बीड़े लगाकर उन्हें खिलाए। फिर घण्टों बातें करती रहीं—सब अपनी ही, उनकी एक न सुनतीं। दोनों का मन जब ऊब उठा और वे जाने को तैयार

हुईं तो राज ने कहा—'माँ, अब तुम आराम करो—इन्हें पहुँचा दूँ। बहुत देर हो रही है !'

लता और माला को तो जैसे किसी क़ैद से नजात मिली। जल्दी से माँ के पैर छूकर हवेली से बाहर चली आईं।

दोनों को पहुँचाकर जब राज लौट गया तो लता की माँ ने पूछा—'बड़ी देर लगाई, राज की माँ बड़ी गपोड़ मालूम होती हैं। लता को तो उनसे खूब पट गई होगी !'

'अरी, कुछ न पूछो माँ ! पूरे तीन घण्टे वह बूढ़ी माथा खाए रही। है तो बड़ी दिलचस्प औरत मगर बराबर अपना ही ओटे जा रही थी। दूसरे की सुनने को मुहलत कहाँ !'—लता ने हँसते हुए कहा।

'और माँ, उन्हें अपने धन का बड़ा गुमान है और साथ-साथ निर्धन के लिए मन में अपमान। उनका यह पक्ष मुझे ज़रा भी न भाया। हम गरीब हैं तो क्या, हमारा भी अपना एक आत्म-गौरव है, अपनी इज्जत-प्रतिष्ठा है। गरीबी पर उनका कटाक्ष मुझे बहुत खला। समाज में कोई धनी है, कोई निर्धन। अमीरी और गरीबी धूप-छाँह की तरह सब जगह मिली-जुली बिखरी हैं। अपना-अपना सुख-दुख अपने-अपने साथ है। मगर अमीर अगर गरीब और गरीबी का मखौल उड़ाए तो

यह समाज कैसे चले ! उनका यह झूठा गर्व निंदनीय है।'—कहते-कहते माला गम्भीर हो गई।

'माला ! बड़ी सयानी जैसी बोल रही है। उन्हें पैसा है; वह गर्व न करेंगी तो हम करेंगे ?'

'बात तो सही है; मगर उनके पास धन है तो रहे—मुबारक हो उन्हें यह धन—मगर इसका प्रचार करने की, यों इश्तहार बाँटने की क्या आवश्यकता है ?'—लता ने कहा।

'और इस ढली उम्र में इस तरह के गहनों से लकदक। समझो कि गहनों के बोझ से दबी जा रही हैं। क्या तमाशा है ! मुझे तो यह सब नक़ल की तरह लग रहा था।'—माला ने अपनी टिप्पणी पेश की।

'यह तो कहो, नाश्ता क्या मिला ?'—माँ ने पूछा।

'बड़ी अच्छी-अच्छी चीज़ें—खूब जायकेदार। नाना प्रकार की। बर्फी, लड्डू, सिंघाड़े—और जाने क्या-क्या !····हाँ, राज बाबू भी अमीरी शान के 'जर्म्स' से अछूते नहीं हैं माँ ! अजीत बाबू और राज बाबू में यही तो अन्तर है। अजीत बाबू बाहर और भीतर एक-से हैं, मगर राज बाबू में यह बात

नहीं। यहाँ तो हमलोगों से खूब हिल-मिल जाते हैं मगर ऊँची हवेली में तो ऊँचे-ऊँचे से दिखते रहे—क्यों जीजी…’

‘तू बहुत बाल की खाल निकालती है माला! इसी उम्र में इतनी छान-बीन! मैं तो बातों में ही उलझकर रह जाती हूँ। मुझे नहीं मालूम कि कौन कैसा है।’—कहती हुई लता ने बातों का सिलसिला बदल दिया।

समय-सरिता की अखंड धारा अपनी अबाध गति से सदा बहती चली जाती है। कोई भी रोड़ा उसमें रुकावट नहीं डाल सकता, कोई भी ज़ोर उसे पलट नहीं सकता। प्रकृति के नियम अटूट हैं, समय का प्रवाह अविरल है। सूरज प्रतिदिन निकल कर ही रहेगा—रात भींगती-भींगती उषा की लाली में सिमट ही जाएगी। ग्रीष्म की लू की लौ उगलते वे बदन झुलसाते दिन बीत ही गए, पानी से कण्ठ तर करते ज्यों-त्यों छटपट में पड़ी रातें भी कट ही गईं। फिर 'आषाढस्य प्रथमदिवसे'—वर्षा की फुहार से ताप-तप्त धरती को साँस लेने की राहत मिली और माला को भी एक आस-भरी टकटकी लग गई—२२ जुलाई अब दूर नहीं जब अपनी आँखों में सरस स्नेह की सिंचाई लिए अजीत बाबू भी अपनी लम्बी छुट्टी बिताकर यहाँ पहुँच जाएँगे और तब यह उदासी की ऊब-भरी उमस कपूर की तरह उड़ जाएगी।

और आ गए अजीत बाबू।

'अजीत बाबू! आ गए आप? ठीक २२ को ही आए। दो-एक दिन पहले ही आ जाते तो कौन चाँद-सितारे आसमान छोड़ भाग जाते?'—लता ने अजीत को देखते ही आँखें नचा कर कहा।

बगल के कमरे में माला अपने उलझे केश सुलझा रही थी। दीदी की आवाज़ कान पर पड़ते ही वह कंघी लिए दौड़ी चली आई। प्रतीक्षा में कब की आकुल आँखें चार हुईं और मुस्कुराकर एक दूसरे ने अभिवादन किया। हाथ जोड़कर प्रणाम करने का शिष्टाचार इस आनन्द के दल में दलमलकर रह गया। इस औपचारिक विधान के व्यवधान को आँखों के आनन्द-सलिल ने गला दिया। हाँ, माला की इस अशिष्टता पर लता खीझ-सी गई मगर कुछ बोली नहीं।

'कहिए घर का कुशल-मंगल।'—लता ने फिर बड़ी आत्मीयता से पूछा।

'सब आपकी कृपा है। सभी स्वस्थ और प्रसन्न हैं।'

'माँ?'

'वह भी अब अच्छी है।'

'एक खत तक न भेजा। और नहीं तो माँ के विषय में तो लिख देते।'

'खत लिखने को सोचते ही सोचते छुट्टी बीत गई।....हाँ, यहाँ माताजी कैसी हैं?'

'आज स्कूल खुल गया न—वहीं गई है। अच्छी ही है।'

'अच्छा, सामान आपका?'

'बाहर ताँगे में है।'

'क्यों?'

'अभी होस्टल में रूम न मिला होगा इसलिए सोचता हूँ राज के यहाँ ठहर जाऊँ।'

'और यहाँ ठहरने में कोई आपत्ति है क्या?'

'आपत्ति तो नहीं, मगर आवश्यकता क्या है?'

'माला, नीचे जाकर ताँगेवाले से बोलो कि बाबू का सामान ऊपर रख जाय। यहीं से होस्टल चले जाएँगे। दो-चार रोज में तो रूम मिल ही जाएगा।'—लता की आवाज में एक कमान्ड की ध्वनि थी। अजीत बिना किसी हीला-हवाला के वहीं

रह गया। और माला—यह बात उसके मन की हुई या नहीं,—यह तो वही जाने।

लता अजीत के लिए नाश्ता-चाय लाने चली गई। अजीत हाथ-मुँह धोकर शृंगार-आइने की बगल में कुर्सी खींचकर बैठ गया और केशों को सँवारती हुई माला से पूछा—'क्यों माला, मैं तो हैरत में हूँ। जबसे आया हूँ, यही गौर कर रहा हूँ कि-तुम तीन महीने में ही इतनी बड़ी कैसे हो गई! लगता है जैसे कोई दूसरी माला हो! एकबारगी इतना फ़र्क़! वाह! कुदरत की भी शान निराली है। देखते-ही-देखते छू-मन्तर की तरह किशोरी को युवती बना देती है और उधर यौवन के चिलमन से बुढ़ापा भी झाँकने लगता है।'

'अजीत बाबू, आपकी आँखें ही बदल गई हैं, मैं तो वही की वही हूँ।'

'तुम वह हो या यह हो, यह तो तुम जानो। माँ ठीक ही कहती है—बेटी की बाढ़ को कोई भी तदबीर रोक नहीं सकती।'

माला केश सँवार रही है। अजीत अखबार उठाकर पढ़ने का बहाना करता है मगर उसकी आँखें बरबस माला के उस सुन्दर ललाट की ओर दौड़ जाती हैं जिस पर वह एक हल्की

बिन्दी उगा देती है—अपने सहज शृङ्गार की पहली कड़ी,जैसी।

'बड़ी देर लगाई आने में—कोई कुशल-क्षेम भी नहीं लिखा इतने दिनों से'—वह एक सुर में लजाई-लजाई कह गई।

'माँ आने ही न देती थी—बड़ी मुश्किल में पड़ गया था। घर पर एक पूरा हंगामा था। किसी तरह भाग कर चला आया।'

'हंगामा कैसा ?'—माला ने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

'बड़ी लम्बी कहानी है—इतमीनान से कहूँगा।········हाँ, तुम कैसी रही ?'

'खूब ठीक। दिन-रात आपकी दी हुई शरत् की पुस्तकों से लिपटी रही। वे न रहतीं तो मुझे में दिन न कटते।'

'मेरे दिन तो पहाड़ जैसे लद गए थे। काशी की यादें बड़ी सताती रहीं। उन दिनों तो···।'

'इसीलिए शायद इतनी देर करके आए! मन ऊब रहा था तो क्यों नहीं जल्दी चले आए ? यहाँ नहीं तो राज बाबू के यहाँ ही ठहर जाते। इधर राज बाबू खूब आने-जाने लगे हैं। उनके साथ घुमाई डटकर होती है। कभी-कभी हम उनके घर भी तो आती हैं। उनकी माँ बड़ी दिलचस्प महिला हैं।'

'ओ! तो राज तुमलोगों से काफ़ी हिल-मिल गया। बड़ा

भला लड़का है। हमारा तो बड़ा पुराना मित्र है। हाँ, तुम लोग उससे तंग तो नहीं गईं ? कभी-कभी बड़ा 'बोर' कर देता है। मज़ाकिया लोग कभी-कभी दायरे से बाहर भी चले जाते हैं।'

'नहीं, हमारे साथ उनकी कभी कोई वैसी हरकत नहीं हुई। आदमी तो बड़े भले मालूम पड़ते हैं—हाँ, वहीं हवेली की हवा का असर तो कुछ ज़रूर है....और वह स्वाभाविक ही है।'

वह बड़े ज़ोर से हँस पड़ी तो अजीत कुछ चकरा गया। हँसने की तो कोई ऐसी बात नहीं हो रही थी। पूछा—'वाह, हँस क्यों पड़ी ?'

'एक बात याद आ गई।'

'क्या ?'

'एक दिन हमलोगों ने आप दोनों का तुलनात्मक अध्ययन शुरू किया.......आप फूलेंगे नहीं—हमने एक मत से आपके ही पक्ष में वोट दिया।'

'धन्यवाद। मगर इस चुनाव की आवश्यकता क्या थी ?'

'बस, यों ही। बात की बात में आप दोनों टपके पड़े तो हमलोगों ने भी सोचा, अपना निर्णय आज ही दे दें।'

'भला किया या बुरा, यह तो आप जानें मगर यह किस्सा

सुनाकर आपने मुझे सातवें आसमान पर चढ़ा दिया। एक वोट भी मेरे विपक्ष में नहीं आया ? तब तो मैं भी कुछ हूँ !'

लता चाय-नाश्ता लिए चली आई। अजीत ने उसके हाथ से ट्रे लेकर मेज़ पर रख दिया।

चाय की चुस्की लेते-लेते अजीत एक असीम शान्ति का अनुभव कर रहा है। लगता है एक भयानक तूफ़ान से लड़ कर वह अपने घोंसले में लौट आया है। हाँ, उसके डैने टूट-से चले हैं—उनमें अब नई शक्ति, नई स्फूर्ति जगानी पड़ेगी। और, वह जाने किस अनजान कल्पना में खो चला।

✣

दिन भर होस्टल में सीट तथा एडमिशन के फेर में चक्कर काटता थका-सा अजीत जब घर लौटा तो देखा, माला उसके लिए नाश्ता-चाय तैयार किए बैठी है।

'क्यों, आज घर बड़ा सूना-सूना-सा लगता है। बात क्या है?'

'माँ-दीदी बाहर गई हैं। आपको नाश्ता कराने की आज मेरी ड्यूटी है। जाने कबसे इन्तजार कर रही हूँ।'

'क्या बताऊँ, होस्टल में जगह आज भी न मिली। दिन-भर दौड़ता रहा। वी० सी० के कमरे में वार्डन जो दो बजे से बैठा तो अभीतक न निकला। शायद कोई मीटिंग चल रही हो। दो-चार रोज फिर मामला टला। कल तो रविवार ही है और परसों कोई पर्व-त्यौहार।'

'तो घबड़ाहट क्या है? कोई पानी में तो भीगते नहीं! यह घर किसी ग़ैर का है?'

'मगर इस तरह कितने दिन...'

'वाह, लखनऊ का असर शायद आप पर भी पड़ गया है। बहुत तकल्लुफ़ कर रहे हैं।'

'नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। लाओ, एक प्याली चाय—।'

'नहीं, पहले यह सिंघाड़े और छोले—तब चाय...'

'वाह, बड़े लजीज हैं सिंघाड़े, चाटवाली बुढ़िया बनाती है चीजें अच्छी...'

'जनाब, चाटवाली की नहीं, यह आपके सामनेवाली की कला है!'—माला ने अजीत की आँखों में कुछ ढूँढ़ते हुए कहा।

'ओह! तो तुम भी सिंघाड़े बनाना सीख गई? कमाल है!'

'और छोले भी—'

'इसमें जरा और नीबू निचोड़ दो तो मजा आ जाएगा।'

'तो खट-मिठ का स्वाद आप भी लेने लगे? पहले तो नाक-भौं सिकोड़ते थे।'

'सब तुम्हारी कृपा है!'

अजीत जब चाय का सिप लेने लगा तो माला ने पूछा—'हाँ, आपने अपने घर का वह किस्सा तो सुनाया नहीं?—कैसा क्या हंगामा......कौन-सी वह घटना थी?'

'अरे, छोड़ो भी, पीछे कभी—'

'जैसा कभी, वैसा अभी....कह ही डालिए.......'

अजीत कुछ गम्भीर हो गया। एक क्षण चुप रहा, फिर माला की ओर देखते हुए बोला—'मेरे घर पहुँचते ही माँ ने पहला 'बम' छोड़ा—'शादी कर लो, तुम्हारी शादी ठीक हो रही है—भाभी के रिश्तेदार की लड़की से। आज ही 'हाँ' कह दो।'

माला चुप।

'मैं परीशान रहा। यह गाज कहाँ से आ गिरी! झट 'ना' कह दिया। माँ नाराज़ हो गई। फिर पैरवी शुरू हुई। जाने कितनी बन्दिशें बाँधी गईं। भाभी बुलाई गई, लड़की का फोटो दिखाया गया, उसके घरवाले भी पहुँच गए। मैं तो एक चक्रव्यूह में पड़ गया। कहीं से निकल भागने का रास्ता नहीं।

उब-चुब हो रहा था। उधर माँ आँसू बहाने लगी। मगर ईश्वर को मेरी हालत पर दया आ गई। शादी का लग्न ही न मिला और मैं बेदाग़ भाग निकला।'

'क्या तमाशा है—शादी आपने कर क्यों न ली ? नाहक माँ का दिल दुखाया !'—माला जोर से हँस पड़ी।

'तुमने भी अच्छी राय दी !'

'हाँ, सच, अच्छी लड़की थी तो शादी करने में क्या हर्ज था ? फोटो तो आपने देखा ही होगा—क्या लड़की अच्छी नहीं थी ?'

'कुछ वैसी ही थी।'

'तो फिर इतना तूल क्यों ?···हाँ, अजीत बाबू ! हमें आप अपनी शादी में बुलाते या नहीं ? यदि नहीं बुलाते तो जिन्दगी भर आपको कोसती। मेरा तो अनुमान है कि आप कदापि नहीं बुलाते। चट मँगनी पट ब्याह हो जाता और हम, दीदी और माँ यहाँ टके-सा मुँह लिए बैठी रह जातीं।'—माला फिर जोर से हँस पड़ी।

'तुम भी मजाक करती हो माला ?'

'देखिए, आप नाराज हो गये अजीत बाबू ! मैं मजाक नहीं—सही कह रही हूँ। इतना हंगामा हुआ मगर आपने

एक खत लिख कर भी हमारी राय न पूछी—शायद कतराना चाह रहे होंगे।'

'तुम्हें गलतफहमी हो गई है।'

'लीजिए, उलाहना को आप गलतफहमी समझ रहे हैं। मैं कहती हूँ कि आपको अपनी शादी में मुझे तो जरूर बुलाना होगा—अगर नहीं बुलाइएगा तो जिन्दगी भर के लिए साहब-सलामत बन्द।'

'अच्छा बाबा, अच्छा! इसके लिए आज ही क्यों झगड़ा कर रही हो? समय आने दो।'

'झगड़ा क्यों न करूँ! समय आते-आते टल गया। वरना आप तो चुप्पे-चोरी विवाह कर ही लेते।'—माला ने जरा गम्भीर बनकर कहा।

'तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। उलटी-पुलटी बातें करती हो।······चलो, चलो छत पर। वहीं मेरा प्रिय गाना मुझे एक बार फिर सुनाओ···।'

'वाह! बड़े भावुक बन रहे हैं आज! कहाँ की चर्चा और कहाँ आ गिरी!'

'हाँ-हाँ, चलो, एक शीतलपाटी ले लो, छत पर बिछाकर बैठेंगे। इस कमरे में मेरा मन ऊब रहा है।'

माला ने शीतलपाटी अजीत को थमाई और खुद तानपूरा लेकर छत पर चली आई।

सन्ध्या की धुंध महानगरी काशी पर छा गई है। छत पर से दूर तक फैली हुई काशी नगरी धुएँ के अन्दर घिरी-घिरी दिखती है। बिजली-बत्तियाँ धुएँ की चिलमन से झुक-झुक झाँक रही हैं। सँकरी-लम्बी गलियों में भीड़ का ताँता अभी भी उमड़ा चला आ रहा है। अजीत चाहता है कि इस भीड़-भाड़ से दूर नीले स्वच्छ आकाश के नीचे एकान्त में शान्ति की साँस ले।

'माला! सावन का आकाश आज बड़ा शुद्ध और निर्मल है। इसी के नीचे बैठने का बड़ा मन कर रहा है। देखो, अब चाँदनी छिटकने ही वाली है। आज शायद चतुर्दशी है। पार्थिव से दूर रह कर आज प्रकृति के समीप रहने की मेरी प्रवृत्ति हो रही है। चलो, छत के बीचो-बीच बैठें ताकि नीचे शहर का एक अंश भी दिख न पड़े। सारी पृथ्वी में अम्बर ही अम्बर रहे और उसमें गूँजती रहे तुम्हारी स्वर-लहरी।'

सन्ध्या और रात्रि की इस संगम-बेला में माला ने जैजैवन्ती की धुन छेड़ दी—

'मोरे मन्दिर अबलों नहीं आए—
कबसे खड़ी हूँ मोरी आली····'

उसकी स्वर-लहरी में उसकी आन्तरिक वेदना की अनुभूति न रहती तो वह किसी के मर्म तक नहीं पहुंच पाती।

स्वर के इस माधुर्य से उसे निस्सीम शान्ति मिल रही है और उसके अंग-अंग में एक शिथिलता समा गई है। वह उसी शीतलपाटी पर अर्धचेतन की अवस्था में लेट गया और माला एक कोने में तानपूरा लिए अपने में डूबी हुई राग-रागिनियों के ज्योति-पथ पर तिरती चली जा रही है।

होस्टल में कमरा मिलते ही अजीत माला के घर से चला गया मगर शाम को अक्सर वह उसी के घर चला आता और गप्पें लड़ाकर या कहीं घूम-घाम कर रात में लौट जाता। यह उसकी दिनचर्या जैसी हो गई है और वह अनायास इस प्रोग्राम की पाबन्दी से बँध गया है।

माला के घर-परिवार से वह घुल-मिल भी तो गया है। उनका सुख-दुख उसे भी व्यापता और अपनी समवेदना से वह उन्हें सुख देता। उस घर का वह भी एक अंग हो गया है और माला की माँ के लिए तो वह सहारा ही है। माला को उसने इतना प्यार दिया है, इतना सद्भाव कि वह दिनों-दिन उसके और भी समीप आती जा रही है। उनकी हँसी-खुशी में राज भी आता, नित-प्रति आता, मगर जल-कमल सा रहता। उनके जीवन में पैठने की क्षमता उसमें न थी—

वह उनसे बहुत दूर था। और बात भी ठीक ही है, एक ही सितार के तार एक सुर में बोल पाते हैं।

आज अजीत सन्ध्या-समय माला के घर आया तो माताजी ने बड़ी नम्रता से कहा—'बेटा, बड़े समय पर आए, लता और माला को अभी एक शादी में जाना है। रात में इतनी दूर उन्हें अकेली भेजना......इतनी दूर...कैसे क्या होगा? मैं तो शाम को स्कूल से थक कर चूर आती हूँ। क्या तुम...'

'.........................'

'इतना समय दे सकोगे?'

'माताजी! मैं चला तो जाता मगर कल एक टेस्ट है—अभी तक कुछ पढ़ न पाया।'

'तो जाने दो बेटा, मैं ही कुछ देर आराम कर उन्हें छुना लाऊँगी।'

माला ने मुँह बना लिया। अजीत ने इसे देखा भी। वह उनके साथ जाना भी चाहता है परन्तु फाइनल इयर और कल के टेस्ट का भूत सर पर सवार है। माता जी की दयनीय स्थिति देखकर उसको दया भी आ रही है। क्या करे? कैसे करे? वह भी असमंजस में है।

कि लता ने चट कहा—'माँ, तुम बेकार फिक्र करती हो।

हमलोग चले आएँगे। इतनी लड़कियाँ गई हैं, किसी के साथ हो लेंगे।'

'और यदि किसी ने लिफ्ट देना स्वीकार न किया तो?' —माला ने टोका।

'तो ताँगा कर लेंगे।'

'दीदी, तुम भूल रही हो। शादी-ब्याह में समय अपने हाथ का तो होता नहीं। रस्में शुरू होती हैं तो पूरी रात यों ही निकल जाती है। कब हमें छुट्टी मिले और कब···कुछ समझ में नहीं आता। और अजीत बाबू को भी वहाँ कितनी देर ठहराया जाएगा?'

'तुमलोग बेकार बेसिर-पैर की सोचने लगती हो। चलो न मेरे साथ, मैं कोई रास्ता जरूर निकाल लूँगी। जहाँ चाह है वहाँ राह भी है।'

माँ अबतक चुप थी। लता की तेजी पर वह बोल उठी—

'यह अच्छी रही! तुमलोगों को अकेली भेजकर क्या मैं शान्ति से सो सकूँगी? मेरी नींद हराम हो जाएगी और एक पैर आँगन में रहेगा तो दूसरा दरवाजे पर। बेटी की माँ का उत्तरदायित्व ये कालिज की छोकरियाँ क्या जानें? जब माँ बनेंगी तब माँ का दर्द समझ पाएँगी!'

लता जाने को कमर कसे बैठी है, माँ उन्हें अकेली जाने देना नहीं चाहती और माला बिना किसी को साथ लिए जाने से डरती है। एक अजीब झमेला खड़ा हो गया है। अजीत की नजर लता की दृढ़ता पर जाती, माँ की बेबसी पर जाती और माला की सहमी हुई सूरत पर जाती। वह तीनों को देखकर फिर अपने आप को देखता। अपने में वह माला की दो सहमी हुई आँखें देखता, एक भीरु बनी हिरणी की तड़प को देखता। दीदी उसे धकेल कर बहादुर बनाकर अकेली ही शादी में ले जाना चाहती है मगर उसके पैर चौखट से बाहर निकलने से इनकार कर रहे हैं।

अजीत माला के द्रवित नेत्रों की मासूमियत पर पिघल गया। 'टेस्ट' के 'रिजल्ट' को भगवान-भरोसे छोड़कर वह झट बोला—'चलिए, मैं चलता हूँ। देखिए, आपलोग देर न करेंगी क्योंकि भोर में उठकर मैं कुछ पढ़ लूँगा। आपलोगों ने तो एक 'फर्स्टक्लास क्राइसीस' खड़ा कर दिया था। चलिए-चलिए, झट उठिए।'

माला को तो भगवान मिल गया—उसकी बाछें खिल उठीं।

माताजी ने अजीत को एक कोने में ले जाकर कहा—'बेटा, क्या करूँ, मेरे स्कूल की मंत्रिणी श्रीमती प्रधान की

बेटी की शादी है, उसमें इन्हें न भेजती तो वह बुरा मान जातीं। कुछ उपहार वगैरह भी भेजना ही पड़ेगा—उन्हीं के भरोसे हमारी रोज़ी-रोटी है। इतना आवश्यक न रहता तो तुम्हें तंग न करती। तुम्हारा कल ही टेस्ट है, मुझे खुद.......'

'आप चिन्ता न करें माताजी, मैं सब सँभाल लूँगा।'

पाँच मील का लम्बा रास्ता तय करके जब अजीत का ताँगा श्रीमती प्रधान के दरवाजे पर पहुँचा तो बारात की आगवानी खत्म हो चुकी थी और लोग लौटने लगे थे।

तीनों जल्दी में हैं। लता को इस बात का फ़िक्र है कि देर से आनेवालों में उसका भी नाम न दर्ज हो जाय। वह झट माला को लिए अन्दर आँगन की ओर दौड़ी और अजीत एक आगन्तुक की तरह बाहर धीमे-धीमे टहलने लगा कि कोई जानकार सूरत नजर आ जाय।

कि देखा, राज दूर एक कोने में बैठा अभी भी शरबत पी रहा है। उसकी जान में जान आई। उधर ही लपका। दोनों की नजरें चार हुईं और राज ने वहीं से पुकारा—

'तो आप भी यहीं विराजमान हैं? खबर क्यों नहीं दे दी? एक साथ ही चले आते।'

'मुझे क्या पता था?'

'मतलब?'

'मैं तो लता जी के घर गया था—वहाँ माताजी ने आदेश दिया—बिटियों को शादी में ले जाओ। कल मेरा टेस्ट है, मगर किसी तरह आना ही पड़ा।'

'तो आप न बराती हैं, न सराती—बस, 'स्कोर्ट' हैं !'

'यही समझो।'

एक क्षण चुप रहकर अजीत ने अपनी परीशानी जाहिर करते हुए कहा—'भई, तुम खूब मिले ! देखो, हमें अकेले छोड़कर न चले जाना। बड़ी दूर है। यहाँ रात में ताँगा भी नहीं मिलेगा।'

'लो !' तो मैं रातभर यहीं बैठा रहूँ ? ना बाबा, ना—

'देखो राज, शरारत न करो। मैं अभी लता जी को खबर भिजवा देता हूँ कि जल्द ही छुट्टी ले लें नहीं तो फिर सवारी न मिलेगी।'

अभी बातें चल ही रही थीं कि लता एक गिलास में शरबत तथा अपनी सहेली के हाथ में नाश्ता की तश्तरी थमाए वहाँ पहुँच गई और अजीत को देते हुए कहा—'राज बाबू ! आपकी मोटरगाड़ी पर हमें भी चलना है—भाग न जाइएगा, वरना...'

'हुज़ूरेआला का जो हुक्म ! खादिम तैयार है !'

राज हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। कहकहे पर कहकहे लगे। अगल-बगल के लोग इधर देखने भी लगे।

लता चली गई तो अजीत ने चुटकी ली—'तो बच्चू, एक कमांड पर 'अटेंशन' हो गए ! मेरी बात आप क्यों मानिएगा !'

'यार, मेरा मज़ाक न उड़ाओ।'—राज ने झेंपते हुए कहा। अजीत भी हँस पड़ा।

मध्यरात्रि के उपरान्त जब सभी राज की गाड़ी पर सवार हो घर लौट रहे थे तो लता ने कहा—'माला ! श्रीमती प्रधान ने अपनी फूल-सी बेटी का जीवन बर्बाद कर दिया।'

'ठीक कहती हो दीदी, भला ऐसा ब्याह किया जाता है ? दुल्हा-दुल्हिन की उम्र में इतना फ़र्क ! और वह भी दूसरा विवाह—पहली बीवी से आधे दर्जन बच्चे।'

'माँ की अक्ल पर पत्थर पड़ा था क्या ?'

'दीदी, पैसे देखकर ये लोग विवाह कर देते हैं। इनका मापदंड दूसरा नहीं होता। देखा नहीं, श्रीमती प्रधान कितनी प्रसन्न थीं ?'

'और उनकी बेटी सुधा उतनी ही उदास थी। दुल्हा देखते ही उसका चेहरा उतर गया मगर करती क्या—इतने लोग जो थे ! किसी तरह मन को बहलाए रही—कोई उसके मनोभाव को लख नहीं सका।'

'दीदी, हमारे देश में बच्चियों की इतनी आसानी से हत्या हो जाती है कि कोई क्या कहे !—उफ़, इस शादी से तो कहीं

अच्छा था इस झमेले से भाग निकलना और अपने पैरों पर खड़ा होना। जबतक हम माँग के सिन्दूर को ललचाई दृष्टि से देखते रहेंगे—हमें मुक्ति न मिलेगी। रस्मो-रिवाज़ की बेड़ी में बँधी नारी तड़प रही है। दीदी, इस जंजीर को यदि काटोगी नहीं तो हमारा कल्याण न होगा। पैसा ही सब-कुछ नहीं है, और पति भी हमारा ध्रुव साध्य नहीं, एक साधन भर है।··· सुधा! हाय सुधा!!···उसकी मासूम सूरत तो मुझे भूलती ही नहीं।···तूने इनकार क्यों नहीं कर दिया—फरार क्यों न हो गई? उफ़!'

माला भाव-विह्वल हो गई है। लता की भी मनःस्थिति अस्वस्थ है। अजीन के कानों में उसकी आवाज़ धनुष के कठोर टंकार सदृश गूँज रही है—गूँज रही है; और राज की गाड़ी उस वियावान रास्ते में चुपचाप पूर्व की ओर भागी चली जा रही है।

✣

'माँ ! तुम कल रात में सोई नहीं। हमलोग जब लौटे तो देखा कि तुम दरवाजे पर कुर्सी पर बैठी ऊँघ रही हो। हमारे साथ अजीत बाबू तो गए ही थे।'— लता ने कौतूहल से पूछा।

'तुम बेटी की माँ का हाल क्या जानो ! तुम अब बड़ी हो चली। चिन्ता लगी रहती है कि तुम्हारी शादी का क्या होगा। गाँठ में पैसे नहीं, कोई सहारा नहीं। जिधर जाऊँगी उधर ही पैसे की माँग होगी। दिमाग काम नहीं करता है। कल रात इसी चिन्ता में डूबी रही, नींद हराम हो गई। फिर सोचती भी रही—तुमलोग अकेली गई हो, साथ में सिर्फ एक अजीत ही है। रात का समय। इतनी दूर का रास्ता।'

'अभी शादी की चिन्ता क्यों करती हो माँ ! अभी एम० ए० कर लेने दो। बाद में देखा जाएगा। फिर शादी की

आवश्यकता ही क्या है ?……नौकरी करूँगी—माला भी करेगी—'

'बेटी, नौकरी तुम्हारे उम्र की औरतों के लिए नहीं है। नारी के लिए यौवन वरदान नहीं, अभिशाप है। क्या जवान और क्या बूढ़ा—सभी की आँखों पर चढ़ जाती है यह। किसी भी ऑफिस में काम करना तुम्हारे लिए दुश्वार हो जाएगा। रात-दिन अपने को बचाते ही बचाते तुम्हारी जान आफ़त में रहेगी। इसीलिए सोचती हूँ, जल्द दुल्हिन बनकर किसी घर को उजाला करो। ज्यादा पढ़ाई-लिखाई या नौकरी तुम्हारे लिए नहीं। यह तो मुझ-सी बेकस दुखिया के लिए है। तुम्हारे पिता जीवित रहते तो भला मैं इस कूचे में कभी आती ?'

माताजी की आँखें सजल हो आईं। लता भी कुछ चिंतित-सी दीख पड़ी। माँ की बातें उसे जँच गईं। जीवन का सत्य जब आँखों के सामने नाच उठता है तो मूल्यों में परिवर्त्तन हो ही जाता है। कठोर सत्य के सामने कल्पना सर टेक ही देती है।

'बेटी ! मैं तो तुम्हारे लिए वर ढूँढ़ चुकी हूँ।……यदि वह राजी हो जाए तो मैं धन्य हो जाऊँ।'

'कौन माँ ! कौन ?'—लता की आँखों में लज्जा तथा कौतूहल दोनों साथ-साथ खेल रहे हैं।

'अजीत।'

'सच माँ? क्या सच?'

'हाँ-हाँ।'

'क्या तुमने उससे बातें की हैं? क्या सब ठीक-ठाक कर लिया है?'—लता ने ऐसे कहा जैसे उसके मन की बात माँ बोल गई है। तब तक शर्म ने आकर उसका मुँह रोक लिया।

'नहीं! परन्तु एकबार उससे बातें करने में हर्ज क्या है? मैं तो समझती हूँ वह तैयार हो जाएगा।'

'रहो, मुझे उनसे बातें करने दो। वह बड़े नेक-मिज़ाज हैं। ज़रूर तैयार हो जाएँगे। बिल्कुल अपने जैसे हो गए हैं।'

इतनी बातें कर आज माताजी को बड़ा सन्तोष और विश्वास हुआ और बाबा विश्वनाथ को लाख-लाख मिन्नतें मानने लगीं।

लता में आत्मविश्वास की कमी नहीं। वह अपनी कक्षा की सर्वश्रेष्ठ छात्रा है और विश्वविद्यालय की सर्वोत्तम वक्ता भी। हज़ारों-हज़ार आवाज़ें तथा 'हूटिंग' का सामना कर वह माइक पर खड़ी हो जाती और फिर उसकी वाणी में ऐसी शक्ति उभर आती कि सभी उसी की ओर खिंच कर चले आते। माँ की शह पाकर वह मन-ही-मन अपनी शादी के सवाल पर अजीत से बातें कर उसका दिल टटोलने को ठान तो बैठी मगर लाख

जी कड़ा करने पर भी महीनों उससे बातें न कर सकी। जब हिम्मत बाँधती तो हिम्मत हार जाती। अजीब पशोपेश में पड़ गई है। उसे जान पड़ता कि उसकी सारी शक्ति ही छू-मन्तर हो गई है। उसका सारा दिग्विजय मानों घुटने टेक बैठा। वह लाख अपने को समझाती मगर बातें मुँह पर आ-आकर रुक जातीं। उसकी इस उड़ी-उड़ी मनोदशा को देख अजीत समझता वह अपनी सोच-याद करते-करते कुछ भूली-भूली-सी हो जाती है।

आखिर आज उसने अजीत को छेड़ा—'अजीत बाबू, चलिए, मुझे बाजार घुमा लाइए। माँ की तबीयत ठीक नहीं, उसके लिए दवा-फल लेने हैं और कुछ कपड़े भी खरीदने हैं। माला को माँ के पास छोड़ देती हूँ।'

अजीत को आज कोई खास दबाव नहीं है। माहवारी टेस्ट से वह फुर्सत पा चुका है। झट उसके साथ जाने को तैयार हो गया।

लता ने बड़े इतमीनान से बाजार किया। जिस दूकान में जाती आराम से बैठ जाती और एक-एक आइटम पर जिरह से दूकानदारों को नाकोंदम कर देती। वे परीशान हो जाते और अजीत भी अपना सब्र खो बैठता। खरीदारी जब खत्म हुई तो

अजीत को लेकर वह एक रेस्तराँ में घुस गई और वहाँ कॉफी और चॉप का ऑर्डर दिया।

'अजीत बाबू, माफ़ कीजिएगा—आज आपको बहुत परीशान किया मैंने। अब लीजिए, एक प्याली कॉफी पीकर थकान मिटाइए।'—लता ने इतनी बातें कुछ अजीब ढंग से कहीं।

'मेरी छुट्टी का दिन है आज—शायद इसीलिए आपने इतना समय लगाया।'

'हाँ अजीत बाबू, हाँ।'

'..................'

'कॉफी एक ही कप ली आपने। कहिए, एक कप और मँगाऊँ?'

'..................'

'एक चॉप भी?'

'नहीं-नहीं, अब चलिए, अब सन्ध्या भी बीत चली। माताजी को दवा भी पिलानी है आपको।'

'हाँ, यह तो मैं भूल ही रही हूँ।...अच्छा, तो एक-दो-तीन...!'

कुछ ही देर में ताँगा शहर के भीड़-भाड़ से बाहर निकल आया। लता का मन स्थिर न था। आज फिर दिन रीता

ही रीता बीता। बातें नहीं ही हो सकीं। ····तो····तो···
सामने एक पार्क नजर आया। लता ने मन्द कहा—'ताँगावाले!
ताँगा रोको!'

'क्यों?'—अजीत ने आश्चर्यचकित हो पूछा।

'अजीत बाबू, सामने बड़ा सुन्दर पार्क है। शहर की भीड़-भाड़ से तबीयत ऊब गई है—चलिए, दो क्षण हरी दूब पर बैठकर मन को शान्त करें। देर तो हो ही गई, मगर चलिए न!'

वह ताँगे से उतर पड़ी। अजीत को भी उतरना ही पड़ा।

लता हरी दूब पर अधलेटी पड़ गई। अजीत वहीं बैठ गया। रात्रि की अँधियारी पार्क के चारों ओर घिर आई है। अब दो-चार जने ही इर्द-गिर्द दिखाई पड़ते हैं। अजीत ने देखा कि लता पार्क में आकर और भी अशान्त हो गई है। कुछ अजीब-सी कर रही है। कभी बैठती और कभी अधलेटी हो जाती। चेहरे पर भावों का लहरा चला आता और चला जाता।

वह पूछ बैठा—'क्यों, आपकी तबीयत तो ठीक है न?'

वह मुस्कुरा कर टाल गई।

कुछ देर बाद अजीत ने फिर टोका—

'कहिए तो अब चला जाय!'

'बस, अब चलेंगे ही…मगर वह बात तो मैं भूल ही गई।'

'कौन-सी बात ?'

लता उठकर बैठ गई। उसका चेहरा गम्भीर हो उठा और दिल धड़कने लगा। बड़ी मुश्किल से रुक-रुक कर वह कहती गई—'अजीत बाबू, माँ अब अच्छी नहीं रहती…… उसे मेरी शादी की चिन्ता सता रही है।……क्या राय आपकी…?' और आँखें फाड़-फाड़ कर वह उसे देखने लगी।

'जैसी आपकी राय हो !'

'सच ?' उसके चेहरे पर खुशी दौड़ गई।

'हाँ, सच, कहिए तो मैं वर ढूँढूँ—एक-से-एक…!'

अजीत ने मज़ाक किया और इधर लता का माथा चकरा गया।

'वर ढूँढूँ ?'—लता ने लड़खड़ाती ज़बान से कहा।

'हाँ-हाँ, मेरी नज़र में दो-चार अच्छे लड़के हैं। चलिए, आज ही माताजी से बातें करता हूँ। यदि आपकी राय पक्की हो तो मैं बात चला दूँ। इसकी चिन्ता आप न करें।'

लता का चेहरा स्याह हो गया। उसके अरमानों का मंदिर ही डगमगा उठा जैसे। हिम्मत जोड़ कर सिसकती आवाज़ में बोली—'मगर माँ ने तो कुछ और ही कहा है।'

'क्या ?'

'आपको ही·······।'—लता के चेहरे पर शर्म की एक पतली रेखा दौड़ गई।

अजीत झेंप गया और कुछ देर के लिए किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सा हो गया। वह यह सुनने को कभी तैयार न था।

'लताजी! मेरी शादी की अभी चर्चा कहाँ? जब तक शिक्षा समाप्त कर कुछ कमाने न लगूँ तब तक तो···' अजीत ने धीमी आवाज़ में कहा।

'तो माँ इन्तजार करने को तैयार हो जाएगी यदि आपकी ओर से उन्हें इतमीनान हो जाए।'—उसके चेहरे पर आशा की एक लकीर फिर खिंच आई।

'कल के लिए मैं आज ही कैसे कुछ वादा कर दूँ? कल जैसा अनिश्चित है वैसा ही वादा भी अनिश्चित हो जाय तो—?'

लता समझ गई—अजीत कतरा रहा है। जितनी तड़प उसमें थी उसका एक अंश भी अजीत में नहीं। बाज़ी ज़िच हो गई। तीर निशाने से चूक गया। लता मुँह के बल गिरी। मगर दूसरे ही क्षण वह बदन झाड़कर उठ खड़ी हुई।

'चलिए-चलिए, अजीत बाबू, बहुत देर हो गई। नाहक ही मैंने आपको परीशान किया। माफ़ करेंगे।'

अजीत ने देखा कि क्षण भर में लता फिर अपने पूर्वरूप में

आ गई। चेहरे पर ज़रा भी शिकन नहीं। अजीत इस अप्रत्याशित घटना के घात-प्रतिघात से अभी स्वस्थ भी नहीं हुआ था कि लता पिछली बातों को भूल तपाक-से ताँगे में बैठ गई। ताँगा चल पड़ा।

रास्ते भर वह इधर-उधर की बातें करती रही जैसे कुछ हुआ ही न हो। मगर अजीत तो मानों अपना भान ही खो बैठा। क्या हुआ, क्या होगा—कहाँ वह है, कहाँ जा रहा है—उसे कुछ पता न रहा। यन्त्र की तरह लता की बातों का उत्तर वह किसी अनजाने बँधे क्रम से 'हाँ-हूँ' में देता चला गया।

✣

'नमस्ते अजीत बाबू! कहिए, प्रसन्न तो हैं?'—अजीत को देखते ही लता ने चोट की।

'हाँ, बस, वैसा ही हूँ जैसा रोज रहता हूँ—कोई खास बात नहीं।'

'मगर, यहाँ क्यों बैठते हैं, उस कमरे में जाइए। माला वहीं सितार बजा रही है। आप तो शायद उसी से मिलने....'

'वाह, आप भी अजीब बात करती हैं!'

'अजीब नहीं, सच कहती हूँ अजीत बाबू!'—लता के चेहरे पर अब व्यंग्य की रेखा साफ़-साफ़ झलकने लगी। फिर अपने को जब्त करती हुई बोली—'अच्छा, जाइए नहीं—आइए, उसी कमरे में चलें। माला आज बहुत सुन्दर गत बजा रही है।'

अजीत जब माला के कमरे में आया तो उसे सितार में तन्मय देखकर चुपचाप वहीं बैठ गया। माला भी मुस्कुराकर अपने आप में खो गई।

लता चुप है। उसे उस कमरे का वातावरण खल रहा है। बाहर भाग जाना चाहती है। अजीत गुमसुम है। लता के व्यंग्य उसकी छाती में तीर की तरह चुभ गए हैं। सितार की झंकार उसे आज छू नहीं रही है। उसका माथा चकरा रहा है। छाती में एक धुंध-सी उठ आई है। एक अकल्पनीय मनोदशा में वह उब-चुब हो रहा है। यह कैसी घटना है! जो कलतक इतनी आत्मीय थी, वही आज ऐसी असहनीय कटु बन बैठी है! कुछ ही क्षणों में क्या-से-क्या हो गया! लता बूझकर भी इतनी अनबूझ बन सकती है, इसकी उसने कभी कल्पना भी न की थी।...

लता जाने कब उठ कर चली गई। अजीत भी अपने ही में डूबा पलंग पर अधलेटे पड़ा रहा कि सितार के तार झंकृत हो थिर हो गए।

'अजीत बाबू! आपने तो मेरा सितार-वादन बन्द करा दिया।'—माला ने उदास-हताश स्वर में कहा।

'मैंने? यह कैसे?'

'हाँ-हाँ, आपने। एक बार भी दाद न दी। घोंघा-सा मुँह लिए बैठे रहे। मेरा सारा हौसला ही पस्त हो गया।'

'.........................'

'भला आज कौन-सी ऐसी आफ़त आ गई कि पल भर में

दुनिया ही बदल गई ?—आपका दिल-दिमाग तो कहीं……'

'नहीं-नहीं, मैं तो ठीक हूँ।'

'यही ठीक होना कहा जाता है ? न होठों पर हँसी, न चेहरे पर खुशी, न आँखों में कोई मीठा इशारा। बस, बेजान पत्थर बन छत की ओर देख रहे हैं।'

'…………………'

'एक बार भी तो आप झूम उठते, एक बार भी तो रीझ कर 'वाह ! वाह !' कहते। आपकी यह खमोशी तो मायूसी की मार से दिल को तार-तार किए जा रही है।'

'अच्छा ! तो अब आप शायरी भी करने लगीं ?'

'खैर, गले से आवाज तो निकली !'

'भई, कल रातभर जागता रहा—इम्तहान का भूत जो हाथ धोकर पीछे पड़ा है। इसलिए जब यहाँ आया तो ऊँघ रहा था।'

'यह तो बहलानेवाली बहानेबाजी भर है। खैर, आपकी बात मान भी लेती हूँ।'

और माला एक लम्बी साँस लेकर चुप हो रही।

उधर लता माँ के पास जाकर अनमनी-सी बैठ गई।

माँ ने पूछा—'क्यों लता, आज बिलकुल चुपचाप हो। बात क्या है, कैसा जी है तेरा—'

'अच्छी हूँ।'

'नहीं-नहीं, तुम कबकी चुप बैठनेवाली ? कुछ-न-कुछ है तो जरूर !'

'नहीं, कुछ नहीं !'

'अच्छा, तुमने अजीत से बातें कीं ?'

'हाँ, कीं—'

माँ के चेहरे पर खुशी की रेखा दौड़ गई। वह झट कलछुल कढ़ाई में ही छोड़ बड़े कौतूहल से पूछ बैठी—'अजीत तो बड़ा भला लड़का है—जरूर तैयार हो गया होगा।'

'ना माँ, ना, एकदम इनकार कर गया !'

माँ के माथे पर बिजली गिर पड़ी। कुछ क्षणों तक उसे विश्वास ही नहीं हुआ। चेहरे पर भावों का लहरा खेलने लगा— 'धत् ! तुम झूठ बोलती हो—मुझसे सच्ची बात छिपा रही हो—शर्मा रही हो।''''ना-ना, ऐसा हो नहीं सकता।''''' वह फिर जोर से हँस पड़ी।

लता को माँ की इस अवस्था पर बड़ी दया आई। आखिर बेटी की माँ अपने को कितनी दयनीय अवस्था में सदा पाती है ! उसके जी में आया कि उससे कह दे कि— ना माँ ! ना, मैं झूठ बोलती हूँ। इस सदमे से तो उसे इस समय बचा ले।'''मगर फ़ायदा क्या ? आखिर तो उसे एक दिन बात

साफ़ करनी ही होगी। ओह...!

'तो इतनी-सी छोटी......बात में......तुम इतनी घबड़ा क्यों गई?'

'वाह, यह छोटी बात है? तुम क्या जानो? माँ बनोगी तो जानोगी!' मेरा ख्याल है तुमने उसे ठीक से सम्हाला नहीं—ज़रूर...नाराज़ कर दिया।'

'नहीं तो...।'—लता कुछ खीझ-सी गई।'

'तो मैं उससे बातें करूँगी। मेरी बात वह ज़रूर मानेगा। ऐसा बेकहा लड़का वह नहीं है।'

माँ के चेहरे पर फिर आशा की एक हलकी रेखा उभर आई।

'नहीं माँ, बेकार है।'

'तू क्यों हर बात में बहस ठान देती है?—मैं सब ठीक कर लूँगी। वह हमारे घर का लड़का है—भोला-भाला। यों ही कह दिया होगा।'

जानकर अनजान बनने में भी एक इतमीनान आ जाता है। लता की बात से अजीत का रुख जानकर भी माताजी ने उस ओर से आँख मूँद कर एक उड़ती कल्पना का सहारा पकड़ लिया और उन्हें इससे एक आसरा मिल गया।

अगर कड़ाही पर तरकारी जलने की न आती तो शायद वह उसी कल्पनालोक में घण्टों बिता देतीं।

उधर माला ने अजीत को झकझोरते हुए कहा—'मेरा भी तो सालाना इम्तहान है। मैं भी तो रातभर जागती हूँ, मगर आपकी तरह इस क़दर कभी थकती नहीं। जब जी ऊबता है तो सितार उठा लेती हूँ। थोड़ी देर में तरोताज़ा होकर फिर पुस्तकों के पन्ने चाटने लगती हूँ।'

'भई, तुम्हारा क्या कहना! कला की छात्रा जो तुम ठहरीं। पन्ने पर पन्ने उलटते चले जाओ—कोई बात नहीं। फिर संगीत तो तुम्हारा विषय भी है। दिमाग़ तरोताज़ा करने के साथ ही साथ एक पर्चे की तैयारी भी हो गई। यहाँ तो फ़ारमूला रटते-रटते तबाही है। रात में गणित के आँकड़े खोपड़ी में कंकड़ मारते हैं और लाख हाथ फैलाने पर भी कभी पकड़ में आते नहीं।'

माला के पास इसका कोई उत्तर न था। दोनो हँस पड़े।

'अजीत बाबू! आप भागिएगा नहीं। माँ आपके लिए नाश्ता बना रही है।'—लता ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा।

'अभी-अभी यह भागने ही वाले थे। मैं सितार बजाती रही और यह मुँह लटकाए बैठे रहे। पूछने पर बताते हैं कि

इम्तहान की थकावट है। जैसे हमलोगों ने कभी इम्तहान दिया ही नहीं।'—माला ने कहा।

लता ने मुस्कुरा दिया। इस मुस्कुराहट में भी एक व्यंग्य छिपा है। अजीत को इसे ताड़ते देर न लगी। मगर उसे सन्तोष रहा कि उसमें उतनी कटुता न थी; और शायद इसीलिए वह नाश्ता करने को तैयार भी हो गया।......उसे आश्चर्य भी कम न हुआ। माँ गर्म-गर्म पूरियाँ छानती जाती और लता ही ला-लाकर उसके थाल में डालती जाती। 'ना-ना' कहने पर भी सब्जी, चटनी-अँचार परस ही देती। अजीत के लिए तो वह कभी-कभी पूरी पहेली बन जाती। फटकारती तो बुरी तरह और दिल मिलाती तो दिल उड़ेल देती। चेहरे पर शिकन तक का नाम-निशान नहीं। उसमें गहराई ही इतनी है कि कोई यदि उसे नापने की कोशिश करे तो नापता ही चला जाय मगर मिट्टी न छू सके।

वह बीच की द्विधा को फाड़ कर फेंक देती। चित या पट—हो जो हो। शिष्टता की धुन आती तो दिल की भीतरी सतह पर लोट जाती—अशिष्टता की झक सवार होती तो माथे पर चढ़ खोपड़ी खा जाने पर तुल जाती। यही तो उसकी खसूसियत रही।

✣

'बेटा अजीत! आज मुझे बाबा विश्वनाथ के दर्शन करा लाओ। तुम्हारे साथ बाबा के दर्शन किए बहुत दिन हो गए। घर और स्कूल की झंझट तो रोज़ लगी ही रहती है। एक दिन भी तो इस झंझट से जान छुड़ाकर शिव की आराधना करें। काशीनगरी में लोग मोक्ष पाने के लिए आते हैं और मुझ अभागिन का ऐसा फूटा भाग कि काशी में रहकर भी बाबा विश्वनाथ के दर्शन नसीब नहीं और यों प्रतिदिन मोक्ष से दूर होती जाती हूँ।'

'हाँ, माताजी, दुनिया का झमेला तो रोज़ का रोज़ लगा ही रहता है—लगा ही रहेगा। चलिए-चलिए, अभी मैं आपको दर्शन करा लाऊँ। फिर मुझे भी फुर्सत नहीं मिलेगी। बहुत पढ़ना है।'

उस दिन मन्दिर में पूजा-पाठ की बड़ी तैयारी थी। भीड़ तो इस तरह उमड़ी चली आती थी जैसे सारी काशीनगरी

सिमट-खिसककर बाबा विश्वनाथ के चरणों में ही लोट जाएगी।

'माताजी! आपने भी दर्शन का आज कैसा दिन चुना? भीड़ के धक्के खाते-खाते हालत तबाह है।'—भीड़ में ऊब कर अजीत कहने लगा।

'तुमने भी खूब कहा बेटा! अरे, आज शिवरात्रि है—इससे बढ़कर दिन और क्या होगा! और हम दुखियों को तो बस, एक शंकर भगवान का ही आसरा है।'

'तो क्या माँगिएगा बाबा से?'

'बस, तुम्हारे लिए एक सुन्दर-सुशील बहू।'

मन्दिर से बाहर निकलकर माताजी ने दुखियों को पैसे दान में दिए, फिर ताँगे में बैठकर घर की ओर चल पड़ीं। कुछ देर चुप रहने के उपरान्त माताजी ने मौन भंग किया—'बेटा! बुरा न मानना—एक बात पूछूँ?'

'हाँ-हाँ, एक नहीं सौ बात—इसमें पूछना क्या!'

'बेटा, सच बताओ, लता ने तुम्हारा दिल कब कैसे छोटा कर दिया कि तुम उसकी ओर से खिंच गए और उससे शादी करने से इनकार कर दिया? तुम भी तो हमारे घर के लड़के ही सदृश हो। तुम्हारी-उसकी जोड़ी भगवान ने बनाकर भेजी है। और तुम्हारे हाथों में उसे सौंप कर मैं भी सुख की साँस

लूँगी। मैं विधि के हाथों बहुत सताई गई हूँ। तुम्हें मेरी हालत पर भी दया आनी चाहिए। इस बुढ़ापे में अब तुम्हीं मेरी नाव की पतवार होगे।—'

अजीत माताजी के मुँह से ऐसी बातों को सुनने को जरा भी तैयार न था। कुछ देर को सन्न हो गया। फिर अपने को सम्हालते हुए कहा—'माताजी! आप कैसी बातें करती हैं? मैंने लता और माला को कभी भी इस दृष्टि से न देखा। स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उनसे मेरी शादी की भी कभी चर्चा होगी। आपने भी अच्छा कहा! इसके लिए आप मुझे क्षमा करें। रह गई आपकी सेवा की बात। तो आपलोगों से जो मुझे आत्मीयता हो गई है, आपसे जो मुझे प्यार मिला है वह मेरे जीवन की अमूल्य निधि है और आपकी सेवा करने का सौभाग्य मुझे सदा मिलता रहे—यही मेरे लिए बड़ी प्रसन्नता की बात होगी। आपकी सेवा कर मैं अपने को धन्य-धन्य मानूँगा।'

माताजी चुप हो गईं। उन्हें भी उम्मीद न थी कि अजीत उन्हें ऐसा उत्तर देगा। अब वह भला आगे क्या बोलतीं? अजीत ने फिर कहा—'माताजी आप अपनी बेटियों की शादी की इतनी चिन्ता क्यों करती हैं? दोनों बड़ी सुसंस्कृत तथा सुशील हैं। उनकी शादी में कभी कोई दिक्कत न होगी। अभी उन्हें पढ़ने दें—एक-से-एक अच्छे लड़के मिलेंगे।'

'मगर तुम्हारे जैसा आदमी तो कोई न मिलेगा।'

'वाह, मुझमें कौन ऐसे सुरखाब के पर लगे हैं? समय आने दीजिए। मैं उनके लिए वर ढूँढ दूँगा।'—वह हँस पड़ा। माताजी भी कुछ मुस्कराती हुई हँसने लगीं।

'बेटा, अभी तुम्हें संसार का अनुभव नहीं। बेटी की माँ के पास यदि रुपए की तिजोरी न हो तो बेटी को आजीवन अविवाहिता ही रखना पड़ता है। और मुझ बेवा के पास यह सब कब कहाँ से आवे?'

'तो उनकी शादी करने की जरूरत ही क्या है? अब तो पुरुषों की तरह नारियों को भी बराबर का हक्क मिलता जा रहा है। शिक्षा देकर उन्हें कोई अच्छी नौकरी ही करने दें। शिक्षिता के लिए तो सभी रास्ते खुले हैं।'

'बेटा, तुम भी लता की तरह बात कर रहे हो। यौवन नारी के लिए वरदान नहीं, अभिशाप है। काशी की जाने कितनी ये कोठेवालियाँ आजादी की तलाश में मुँह की खाकर नाबदान में पड़ी-पड़ी सड़ रही हैं। नारी को किसी के पल्ले बाँध देना कहीं श्रेयस्कर है नहीं तो अकेला आजाद जीवन नारी के लिए पग-पग पर खतरे की चुनौती है। फिर नारी का स्थान उसका पतिगृह है न कि दोतल्ले में बनी ऑफिस। उसकी

गोद का सौंदर्य उसका शिशु ही है न कि ऑफिस की फाइल।
इस जहन्नुम में उन्हें आने की सलाह मत दो बेटा!'

'माताजी, ये सारी बातें अब दकियानूसी क़रार दे दी गई हैं। देश अब अंगड़ाई ले रहा है। अब पुराने मूल्य सड़े-सूखे फूल की तरह फेंक दिए जाएँगे।'

'देश लाख अँगड़ाई ले—हमारा मन, हमारी प्रवृत्तियाँ तो बदलने से रहीं। मेरे बचपन से ही दहेज-प्रथा उठाओ—सम्मेलन तथा जात-पाँत तोड़ो-मंडल की सभाएँ शहरों में हुआ करती हैं मगर ये सारी समस्याएँ जैसी कल थीं वैसी ही आज भी हैं। या यह कहो वे दिनों-दिन बिगड़ती ही जाती हैं। हमारा समाज तो अपना रंग-रवैया बदलने से रहा। सभी लड़के पढ़ने के लिए या विलायत जाने के लिए खर्चा माँगते हैं बेटी की माँ से। यह ज़ुल्म नहीं तो क्या है!—सरासर ज़ुल्म।'

माताजी नहला पर दहला देती चली गईं। अजीत ने चाहा इस पौर से निकल कर भागना कि पीछे से राज ने आवाज़ लगाई—'कहो किधर से आ रहे हो?'

'ख़ूब मिले भाई! माताजी को दर्शन कराकर लौट रहा हूँ।'

राज साइकिल पर था। वह भी एक हाथ से ताँगा पकड़े साथ-साथ चलने लगा। राज के आने से अजीत को राहत

मिली। फिर बात का सिलसिला बदल गया। कभी इम्तहान की चर्चा होती तो कभी बाबा विश्वनाथ के मन्दिर की भीड़ की चर्चा होती। माताजी भी उनकी बातों में दिलचस्पी लेतीं। फिर ताँगा एक लम्बा रास्ता तय कर घर पहुँचा। सीढ़ी पर ही लता ने हँसते हुए राज का स्वागत किया—'राज बाबू! हमारे यहाँ न आने की कसम खाकर गए थे क्या आप? इधर नजर ही नहीं आए। माँ रोज पूछतीं कि राज आजकल नहीं दिखता और आप ऐसे गायब हुए जैसे गधे के सिर से सींग!' और फिर वही उन्मुक्त हँसी।

'लताजी! आप भी कमाल करती हैं। आजकल इम्तहान के दिनों में किसी छात्र से भेंट हो जाना मुश्किल ही जानिए। दो साल तो छूटकर चकल्लस में कटे, अब आटे-दाल का भाव मालूम हो रहा है।'

बातें करते-करते वे अन्दरवाले कमरे में चले गए। अजीत भी उन्हीं के साथ वहीं बैठ गया मगर लता उसकी ओर जरा भी मुखातिब नहीं हुई। अजीत कुछ अजीब घुटन अनुभव करने लगा मगर लता शायद जानकर उसकी अवहेलना करने को तैयार आई थी।

'मगर आप जैसे मस्त जीव पर भी इम्तहान का जादू चढ़ सकता है—यह तो शायद नया आश्चर्य है!'

'वाह, यह भी अच्छी रही ! अजी साहब, मैं अब फेल करना नहीं चाहता। लोग-बाग कितनी फब्तियाँ कसते हैं !'

'..................'

'अच्छा, आपकी कलाकार कहाँ है ? कहीं दिखती नहीं।'

'उसपर भी आप ही जैसा भूत सवार है। बस, मैं ही बरी हूँ।'

'ओ ! तो माला अभी 'स्टडी' में है। मेम साहिबा को हमलोगों से बातचीत करने को भी फुर्सत नहीं ! ठहरो, अभी मैं उसे पकड़ लाता हूँ।'

माला ने लाख हीला लगाया पर राज के आगे उसकी एक न चली। आखिर हार मान वह उस मजलिस में पहुँच ही गई और फिर घण्टों हँसी-ठहाके और गुलछर्रे उड़ते रहे। राज ने अपनी जिन्दादिली का सिक्का जमा दिया।

❖

अजीत के सर पर इम्तहान का भूत सवार है मगर ये घटनाएँ उसे चैन नहीं लेने देतीं। वह जितनी ही शान्ति की खोज करता उतना ही अशान्त होता जाता। किताब के पन्नों पर लता का व्यंग्य-भरा चेहरा उभर आता—नोट की कॉपियों पर माताजी की बेबस सूरत नाच जाती। वह चला था कॉलेज की डिग्री लेने और यहाँ लेने के देने पड़ रहे हैं। जिस घर में वह राहत पाने जाता वही आज उसे खाए जा रहा है। ज़िन्दगी जहाँ मौज की तफ़रीह बनती वहीं एक-एक साँस जैसे झुलसाए जा रही है। आज उसे पढ़ने में ज़रा भी जी नहीं लगता। पन्ने पर पन्ने उलटता जाता मगर न आँख जमती न मन रमता।

आख़िर ऊबकर किताबों को फेंक होस्टल से बाहर निकल गया। सोचा—सन्ध्या के इस शान्त वातावरण में कहीं दूर तक जाकर टहल आए। सर हल्का हो जाएगा। निर्जन-सुनसान

रास्ता—कभी-कभी ताँगे और साइकिल अगल-बगल से निकल जाते। कभी सर पर टोकरी या कन्धे पर कुदाल लिए मजदूरों की टोलियाँ घर की ओर भागती मिल जातीं।......

कि वही चिर-परिचित आवाज उसे फिर सुनाई पड़ गई और वह चौंक उठा—'ऐ', माला कहाँ से!'........हठात् एक ताँगा आकर पास में रुक गया। उसके साथ दो और सहेलियाँ बैठी हैं।

'अजीत बाबू! इधर क्या चक्कर लगा रहे हैं इस सुनसान में—?'

'और तुम इधर कहाँ से भटकी चली आई?'

'बस, आपको खोजती हुई!'—माला ने जोर से हँसते हुए कहा।

'खैर, खोज तो लिया तुमने। अब बताओ ऑर्डर क्या है!' फिर दोनों सहेलियों को देखकर जरा झेंप-सा गया।

'ऑर्डर यही है कि आप आगे ताँगे में बैठ जाइए। नहीं तो कमला और रजिया को मुझको घर तक पहुँचाने नाहक ही जाना होगा। मैं रजिया के घर एक पर्चे के लिए कुछ जरूरी किताबें लाने गई थी। बड़ी देर हो गई। हमलोग 'ज्वायंट स्टडी' करने लगीं। अब ये मुझे घर छोड़ने जा रही हैं। अरे.......चलिए-चलिए, देर क्यों करते हैं? आगे एक ताँगा

मिलते ही इन्हें लौटा दूँगा और आप मुझे घर छोड़ आइएगा।'

तीनों खिलखिलाकर हँस पड़ीं। अजीत बुरा फँसा। आज फिर लता का एक तीर छाती में चुभाकर लौटना पड़ेगा।

'सकपकाते क्यों हैं अजीत बाबू! आइए-आइए, बैठिये। मेरा इतना छोटा इसरार भी आप ठुकरा देंगे?'

'नहीं-नहीं, चलो, ऐसी भी क्या बात है!'

वह आगे बैठ गया। ताँगा जैसे हवा में उड़ चला। कुछ देर बाद एक नुक्कड़ मिला जहाँ दो-चार ताँगे खड़े थे। ताँगे को देखकर अजीत ने कहा—'माला, यहीं उतरकर दूसरा ताँगा कर लो। अपनी सहेलियों को लौट जाने दो वरना इन्हें बड़ी देर हो जाएगी।'

कमला और रजिया अपने ताँगे में लौट गईं। माला और अजीत दूसरे ताँगे में घर की ओर बढ़े।

अजीत फिर चुप है। गुमसुम, उचचुप। माला उसे छेड़ती परन्तु वह कतरा जाता। मगर इस बार उसने झकझोर दिया—'अजीत बाबू! यह परिवर्त्तन क्यों? इधर आप इतने चुपचाप गुमसुम क्यों रहते हैं? जरूर कोई बात हुई है। यह इम्तहान का जलवा तो नहीं दिखता।'

'नहीं, कुछ नहीं।'

'नहीं, जरूर कुछ।'

वह हँसने लगी तो अजीत भी उबल पड़ा—'माला ! एक अनहोनी घटना घट गई है।'

'आखिर क्या ?'

'उस दिन लता ने मुझसे एक बड़ा बेतुका सवाल पूछ डाला—क्यों; मुझसे शादी करोगे ? कर लो—कर लो न !' मैं पशोपेश में पड़ गया। अजीब उलझन......।'

'तो इसमें पशोपेश में पड़ने की क्या बात थी ? 'हाँ' या 'ना' कह देते।'

'वाह ! तुम भी खूब निकली ! मैंने 'ना' ही कहा।'

'फिर.......'

'फिर माताजी ने मुझे घेरा तो मुझे लाचार कहना पड़ा—जिसे मैं बराबर बहन मानता आया हूँ उससे भला यह सम्बन्ध !'

'बिल्कुल ठीक उत्तर दिया आपने। मगर मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि आप इतनी-सी छोटी बात के लिए इतने परीशान क्यों हो रहे हैं ? बात यों आई और यों गई, बस।'—उसने चुटकी बजाते हुए कहा।

'.........................'

'बात यह है कि मेरी माँ दुख की मारी एक विधवा है। कहीं कोई सहारा नहीं। इस परिस्थिति में दीदी से कुछ कहला

ही दिया या आपसे उन्होंने ही कुछ कहा तो इसके लिए इतना बवाल क्यों ? जो बात जहाँ उठी, वहीं दब गई । फिर छोड़िए भी अब इन बातों को ।'

माला से यह आपबीती कहकर अजीत को आज बड़ी शान्ति मिली । इन सारी उलझनों को उसने पहले ही उसके सामने रख दिया होता तो इतनी परीशानी न होती । हाँ, अब वह इस हैरत में है कि इतनी बड़ी बात को माला इतनी छोटी मानकर कैसे टाल गई ! आखिर उसने लता के प्रस्ताव को एक मज़ाक ही समझा । अजीब हाल है । उसके चेहरे पर कोई शिकन—कोई थिरकन नहीं । जैसे कुछ हुआ ही न हो । मगर माला नहीं समझती—लता इन बातों को इतना हल्का नहीं समझती, वह इसे गम्भीर समझती है । माला अभी भी बालिका ही है । दूध-पीती बच्ची । माताजी भी इसे मज़ाक नहीं समझतीं । वह भी काफी गम्भीर थीं ।

'क्यों,—अभी भी माथे का धुंध साफ़ न हुआ ? बड़े सिड़ी हैं आप !'—माला ने अनायास ही कह दिया ।

'मैं तो समझ ही नहीं पाता कि तुम सिड़ी हो या मैं !'—अजीत के मुख से भी निकल ही गया ।

'अच्छा, यह भी अच्छी ही रही ! खैर, दोनों सिड़ी ! बाज़ी बराबर की तो रही ! अब कहिए, पढ़ाई कैसी चल रही है ?'

'जब से यह तमाशा उठा— तब से बिल्कुल नहीं।'

'आप भी धन्य हैं। तिल का ताड़ बना दिया। युनिवर्सिटी का यह आपका आखिरी साल है। इस बार अगर आपको पहला दर्जा न आया तो आपकी ज़िन्दगी खराब हो जाएगी—इसलिए एकाग्र-चित्त हो पढ़ें।'

'बड़ी सीख देनेवाली बन गई हो!'

'तो छोड़िए, खूब खेलिए-खूब खेलिए—अब खुश? नहीं-नहीं, खूब सर टकराइए, खूब माथापच्ची कीजिए—खूब-खूब-खूब।'

बातों के सिलसिले में पता ही न चला कि माला का घर आ गया है और ताँगा रुकने ही वाला है। अजीत धड़फड़ाकर उठा और बोला—'माला, तुम जाओ। मैं अब यहीं से लौटता हूँ। बहुत पढ़ना है। ऊपर जाऊँगा तो माताजी जल्द छोड़ेंगी नहीं। कहेंगी कि खाना खाकर जाओ।'

'जैसी आपकी मर्ज़ी—।'

अजीत कतराकर निकल गया मगर चलते-चलते भी शायद उसने सच्ची बात माला से नहीं बताई कि वह क्यों भाग रहा है।

'आज इतनी उदास क्यों हो माँ?'

दिनभर स्कूल की नौकरी, फिर घर में ऐसी उदासी—आखिर इसका असर तन्दुरुस्ती पर कितना बुरा पड़ेगा? न जाने कौन चिन्ता यों घेरे रहती है तुम्हें?'—लता ने वेदना-भरी आत्मीयता से कहा।

'.......................'

'चिन्ता चितासमान है माँ! इसे झाड़ फेंको।'

'मेरी चिन्ता तो तू है बेटी! तू एक किनारे लग जाती....'

'फिर वही पुराना किस्सा! इसकी चिन्ता अब तुम छोड़ो। मैं पढ़-लिखकर नौकरी करूँगी। दहेज देने को पैसे नहीं तो इस तरह हाथ पसार कर भीख माँगने को मैं न कहूँगी। बड़ी जलालत है इसमें।'

'ना, मैं अजीत पर बड़ा भरोसा किए बैठी थी, मगर वह सपना टूट गया। उस दिन भी उसने वही बात दुहराई। जी:

मसोस कर रह गई। करती क्या? ऐसी उम्मीद मुझे न थी।'

'उसका नाम न लो माँ! बड़ा पतित है वह। उसे तो यहाँ आने न देना चाहिए।'—लता की आँखें लाल हो गईं। खीस से दाँत पीस कर बोली।

'नहीं बेटी! ऐसा नहीं कहते। उसने फिर भी हमारा उपकार किया है।....'

'उपकार न खाक किया है। कभी कुछ किया भी हो तो आज वह अत्याचार करने पर तुला है। जानती हो वह मुझसे क्यों कतरा गया? वह माला से शादी करना चाहता है।'

'धत्, ऐसी बात दिमाग में न ला...।'

'तुम भी क्या बात करती हो माँ! तुम आदमी नहीं पहचानती। वह छँटा हुआ.......।'

'मगर मेरी माला तो उसके सामने बच्ची है—उसका मेल उसके साथ.......।'

'और तुम यह बच्ची से भी बच्ची की तरह बात करती हो'....

कि राज हँसता हुआ पहुँच गया।

'वाह, माँ-बेटी में बड़ी सीरियस गुफ्तगू हो रही है। क्या मैं भी आ सकता हूँ?'

'आ बेटा, आ······नहीं, कुछ खास बात नहीं···। मगर आज बहुत दिनों बाद···।'

'क्या कहूँ, इम्तहान का पंजा जो गला छोड़े ! बस, अभी-अभी उससे निबट पाया हूँ और वहाँ से छूटते ही यहाँ आया। देखिए, अभी हाथ की रोशनाई भी नहीं मिटी है।'—कहकर हँसने लगा।

'तो आइए, माँ के बनाए हुए पनतुए चखिए—बड़ा शेर मारकर आए हैं आप।'

'पहले 'लीडर' में नाम निकल आए तो समझना कि शेर मारा गया।'

'आइए-आइए, वह तो मरा ही समझिए।'—कहती लता राज को अपने कमरे में ले गई और बड़े स्नेह से बिठाकर गप्पें लड़ाने लगी।

'एक पनतुआ और······'

'नहीं-नहीं, मुँह मीठा से भर गया है। अलबत्ता कुछ नमकीन चखाइए। अब बस······।'

'तो लीजिए एकाध समोसे, अभी नीचे की दूकान से गरम-गरम······'

'लाइए। एक वह भी सही।···और हाँ, माला कहाँ है?'

भागते किनारे

'वह भी आती ही होगी—आज उसका भी इम्तहान ख़त्म हो रहा है—'

'ऐलो ! उधर अजीत का भी आज ही खत्म हो रहा है। तीनों एक ही दिन आज़ादी पा गए ! यह भी अच्छी रही। चलो, कल से मस्ती कटेगी। कहिए लता देवी ? क्या ख्याल है आपका ?'

'बस, जो ख्याल आपका है।'—उसके होठ शोखी में टेढ़े होकर खिल पड़े। राज को उसकी इस मुद्रा पर बड़ा आनन्द आया।

'कभी गंगा की गोद में झिरझिरी और कभी चित्रा सिनेमा में दृष्टिभोग ; कभी मटरगस्ती और कभी रेस्तराँ में बालाई की लस्सी से गला तर किया जाएगा। कहिए, कैसा प्रोग्राम है ?'

'यह भी कहना ही रहा ?'

'और हाँ, अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शनी तथा संगीत-सम्मेलन भी अगले माह में होनेवाला है। उसमें भी चलेंगे। बड़ा मजा आएगा।—'

दोनों जोर से हँस पड़े।

'लता ! अजीत को भी कुछ दिनों के लिए रोकना

चाहिए नहीं तो वह कल ही से घर जाने को कमर कस लेगा।' बड़ा बुद्धू है।'

'किस मरदूद का नाम ले लिया आपने? वह भी कोई आदमी है? उसकी खोपड़ी का तो कोई अन्दाज़ ही नहीं मिलता। अजीब खब्त है।'

'मुझे तो कभी ऐसी बात नहीं दिखी। हाँ, वह बुद्धू ज़रूर है।'

लता कुछ क्षणों के लिए सोचने लगी। फिर दीवार पर टँगे हुए चित्र पर आँखें गड़ाते हुए कहा—'बुद्धू मैं तो नहीं मानती—हाँ, चालाक वह ज़रूर है।'

लता की बातों से राज को आश्चर्य तथा मनोरंजन दोनों हुआ। वह उसे समझ नहीं पाया।

कुछ देर बाद अजीत और माला एक ही साथ पहुँचे। अजीत अपना इम्तहान देकर सीधे माला को लेने चला गया और वहाँ से दोनों उसके साथ ही घर आए। राज दोनों से बड़े प्रेम से मिला। माताजी ने दोनों को खूब नाश्ता भी कराया। मगर लता बराबर कतराती रही। नाक-भौं सिकोड़ती रही। खुशगप्पियाँ बहुत देर तक चलती रहीं, राज ने सभी को हँसा कर बाग-बाग कर दिया किन्तु लता ने अजीत की ओर आँखें उठाकर देखा तक नहीं और न कोई बात की।

माला को लेने उसकी सहेलियाँ चली आईं। सबका इम्तहान आज ही खत्म हुआ है और आज ही सबके कहीं जाने का प्रोग्राम बन कर तैयार है। राज भी खुशगप्पियाँ लड़ाकर घर जाने को तैयार हुआ तो लता ने अजीत को टोका—'राज बाबू तो बहुत देर से बैठे हैं—आपको क्या जल्दी है?'

'वाह, आप भी खूब कहती हैं! माँ का फ़रमान पहुँचा है। घर से बुलाने को दो तार आ चुके। उसी की तैयारी—'

'मैं आपका ज्यादा समय न लूँगी। कुछ देर और—।'

अजीत बेमन का बैठ गया। कलेजा तो धक् कर गया। अब जान छूटने को नहीं; फिर कोई सवाल-जवाब होगा।

राज को सीढ़ियों तक पहुँचाकर जब लता लौटी तो बड़ी गम्भीर दिखी। उसकी सूरत को देखकर अजीत फिर सहम गया। उसे जान पड़ा कि उसकी हिम्मत टूट रही है।

'कहिए अजीत बाबू! आज्ञा हो तो एक बात पूछूँ।'

'अवश्य पूछिए साहब, एक नहीं—अनेक।'—अजीत ने अपने को संयत करते हुए कहा।

'माला और मेरी शादी की बात लेकर माँ इधर बेतरह चिन्तित रहती हैं। यदि आप कहें तो आपकी शादी माला से कर दी जाय। माँ को कोई एतराज़ न होगा। और शायद

आपकी भी नज़र उसी पर है। इसीलिए शायद माँ के पहले आग्रह को आपने अनसुना कर दिया।'

लता इन सारी बातों को ऐसी आसानी से कह गई जैसे इन बातों में कोई गरिमा, कोई भावना तनिक भी न हो और उसका दिल एक निर्लिप्त परमहंस का अनासक्त दिल हो।

अजीत तो कभी लता को देखता, कभी पलट कर अपने-आपको देखता और कभी असहाय-सा आकाश को देखता। हृदय की गति बहुत तेज़ हो गई और उसे लगा जैसे उसकी सारी शक्ति क्षीण होती चली जा रही है। लता के सामने—एक नारी के सम्मुख—वह इस अवस्था पर पहुँच जाय—यह कैसी कल्पना, कैसी विडम्बना! चट अपनी बची हुई तमाम शक्ति को केन्द्रीभूत कर उसने झट कहा—'लताजी! कहाँ की बात कहाँ ला रही हैं आप? माला के प्रति मेरे मन में कभी कोई ऐसी भावना नहीं आई। जिस स्नेह-दृष्टि से मैंने आज तक आपको देखा उसी भावना से माला को भी। फिर उससे विवाह करने की बात ही कहाँ उठती है?'—अजीत एक सुर में बोल गया। हाँ, डर भी रहा है कहीं कुछ ग़लत न बोल जाय।

लता ऐसा उत्तर सुनने को तैयार न थी। वह सन्न हो गई। उसने सोचा कुछ और था और हुआ कुछ और ही। ....यह अजीत भी एक पहेली है—पहेली। इसकी गहराई

नापना उसके मान का नहीं। जिस धरती पर वह खड़ी होना चाहती थी, वही पाँव तले से सरक गई।

दोनों चुप बैठे रहे। लता को हिम्मत न थी अजीत की ओर देखने की और अजीत सोच रहा था कि इस समय कोई उसे ऊपर से खींच लेता तो उसे राहत मिलती।

लता एक पत्रिका के पन्ने अनदेखे उलटती रही। अजीत शून्य की ओर एकटक निहारता रहा। आखिर बिना कहे-सुने धीरे-से उठकर चलता हुआ।

यह सारी घटना कुछ ही मिन्टों में समाप्त हो गई। एक सीन-सी, जैसे आई वैसे ही चली गई।

❖

अजीत जब माला के घर से चला तो उसकी मानसिक स्थिति कुछ ऐसी हो गई थी कि उसे कुछ ठीक-ठीक सूझ न रहा था। बस, सीढ़ियों से उतरते ही निरुद्देश्य यों ही पैदल चल पड़ा। हाँ, उसकी चाल में इतनी तेज़ी थी जैसे ट्रेन पकड़ने को लपका जा रहा हो। इसी उजलत में कभी खोंचेवाले तो कभी फुटपाथ पर भागते हुए अन्य व्यक्तियों से अक्सर टकरा जाता। सभी उसकी ओर देखने लगते—पागल तो नहीं है! बहुत दूर निकल गया—यों ही सोचते-सोचते, उलझते-उलझते।

लता को उसने सही उत्तर दिया या गलत, इसका समाधान वह नहीं कर पा रहा था। यही भावना उसे बेचैन किए हुए थी। काश, लता की बात टालकर माला से पूछ तो लिया होता! वह अब बालिका नहीं है। वह भी सभी बातों में अपना दखल चाहती है। परन्तु अब तो तीर तरकस से

निकल चुका, मुँह से निकली हुई बात तो अब लौट नहीं सकती। उफ़, क्या से क्या हो गया! हे भगवन्! अपने को निर्दोष घोषित करने की धुन में कहीं कोई महान् दोष तो न कर गया वह! पुण्यात्मा बनने के फेर में उसका दामन पाप से तो न रंग गया!! उसके हृदय में एक आग—एक शिखा जल रही है। घंटों इधर-उधर चक्कर लगाता होस्टल लौट आया और अपने-आप में खोया-खोया जाने कब सो गया।

'उठिए, उठिए अजीत बाबू, आखिर कितना सोइएगा? देखिए, कितना दिन चढ़ आया!'—माला ने उसकी चादर खींचकर उसे जगा दिया।

'अरे, तुम! और यहाँ!!'

'तो यहाँ आना क्या कोई गुनाह है?'

'तुम भी खूब मज़ाक करती हो। देखती नहीं, यह लड़कों का होस्टल है? भला लोग-बाग क्या सोचेंगे? आज दिनभर लड़के मज़ाक करते-करते मेरा यहाँ रहना मुश्किल कर देंगे।'

'उनकी बला से! और यहाँ रहना ही कहाँ है! अब आप लौटकर यहाँ आते तो नहीं?'

'बड़ी ढीठ हो गई हो।'

'जल्द तैयार हो जाइए। कहीं घूम आया जाय। इम्तहान देकर मुक्त हो गई हूँ। बड़ा हल्का अनुभव कर रही हूँ।'

'कोई बात नहीं । तो हवा में सेमल की रुई की तरह सदा उड़ती रहिए । मालूम होता है, 'लाइट' अनुभव करते-करते ही आप यहाँ भी उड़ती चली आई हैं ।'

'हाँ, कुछ ऐसा ही है ।'

'तो विराजिए—मैं अभी नीचे से तैयार होकर आता हूँ ।'

मंजन-ब्रश लिए अजीत नीचे चला गया । माला कमरे में अकेली रह गई । कभी अखबार के पन्ने उलटती और कभी इम्तहान में इकट्ठी की हुई किताबों का अम्बार देखकर तिलमिला जाती । इसी सिलसिले में उसकी निगाह एक डायरी पर पड़ गई । चट उठा लिया । देखा—खासी अच्छी बिल्कुल नई डायरी है । अन्दर देखा । कल की तारीखवाले पृष्ठ पर कुछ गोदा हुआ है —बड़े महीन अक्षरों में, अंधाधुंध । उसकी कौतूहलपूर्ण आँखें उसपर जम गईं—

…'अजीब परीशानी है । लता ने आज बड़ा बेतुका सवाल पूछा………मैं भी क्या उत्तर देता…जो सूझ गया, दे दिया । ………मैंने कभी भी ऐसे सवाल की प्रतीक्षा ही न की थी और न कभी कल्पना ही की थी कि ऐसा उत्तर मैं दूँगा………ऐसा उत्तर……हाँ-हाँ,—ऐसा उत्तर ।……तो इसका उत्तरदायित्व किसपर है ? …मुझपर—सोलहो आने मुझपर…फिर माला क्या सोचेगी ? कितना ग़लत उत्तर मैंने दे दिया ? यह क्या

जलजला आ गया एकबारगी कि जिस मीनार पर खड़ा था वही जमींदोज हो गई! अब तो हड्डी-पसली का भी क्या पता!······यह भी अच्छा ही रहा अजीत बाबू, यह महल अपने ही हाथों बनाया और अपने ही हाथों गिरा दिया! न बनाते देर, न मिटाते देर। तुम्हारी तक़दीर ही ऐसी है मियाँ!······सन्ध्या और आधी रात इसी उधेड़बुन में कट गई कि माला से क्या कहूँगा, कैसे मुँह दिखाऊँगा! वह भी मुझे क्या समझ बैठेगी! भाई ठीक कहते हैं—तुम बड़े 'नरवस' लड़के हो—जल्द घबड़ा उठते हो और इसीलिए सब जानते हुए भी परीक्षा में अच्छे नम्बर नहीं ला पाते हो। परिस्थिति का मुकाबला करो—उसके सामने ढेर न हो जाओ। तुम्हारे तो पैर डगमगाने लगते हैं। ललाट पर पसीने की बूँदें उग आती हैं।···उफ़!······तो सो जाऊँ अब! कल सारी बातें माला से कहूँगा।··· परन्तु माला······। वह भी तो अभी बच्ची है—बातें समझती नहीं—बस, हँसती रहती है। उलझी हुई बातें उसे सुलझी हुई लगती हैं और सुलझी हुई उलझी। धत्! चलो, सो रहो। शायद सपनों में कोई समाधान मिल जाय—'

यहीं उस दिन की डायरी एक लकीर में विलीन हो गई है! माला को यह पढ़कर बड़ा मनोरंजन हुआ और उसने जोरों का

ठहाका लगाया। अजीत ने चौंक कर कमरे में प्रवेश किया और पूछा—'ऐं! अकेली-अकेली पागल की तरह यह क्या हँस रही हो? आखिर क्या मसाला मिल गया है तुम्हें—?'

'वही मसाला जो आप मुझे कभी चखाते नहीं! जी, तो आप डायरी भी लिखते हैं?—ह-ह-ह-ह...!'

अजीत को काटो तो खून नहीं। चोर सेंध पर पकड़ा गया। होठों पर ताला लग गया और आलमारी में रखे हुए आइने की तरफ़ मुँह करके वाल झाड़ने लगा तो झाड़ता ही रहा तवतक—जबतक माला ने आइना उठाकर पलंग पर फेंक न दिया।

'क्या तमाशा करती हो! अभी दाढ़ी बनानी थी।'

'भला, अन्धेरे में दाढ़ी वनती है? आइए, इधर रोशनी में—ज़रा मुँह तो देखूँ!' और फिर वही ठहाका—ह-ह-ह-ह।

'क्या लड़कपन करती हो? अगल-वगल के जूनियर लड़के भला क्या समझते होंगे? चलो, चलो यहाँ से, तुम मुझे बेइज्जत करके धर दोगी।'

वह सोचता है—आफ़त की मारी डायरी इसे आज कहाँ से मिल गई जो आफ़त की पुड़िया वन गई! धत्! आज ही लिखना शुरू किया और आज ही पोल खुल गई!

अजीत माला को लिए सीढ़ियों से झट उतरकर ताँगा-स्टैंड की ओर बढ़ चला। इर्द-गिर्द खड़े लड़के दोनों को आँखें फाड़कर देख रहे हैं। कुछ दूर ताँगे पर जाने के बाद एक रेस्तराँ मिला। दोनों वहीं उतर गए।

'आओ, कॉफी पी जाय—कुछ नाश्ता भी...' अजीत ने रेस्तराँ की ओर जाते हुए कहा।

कॉफी आई। दोनों पीने लगे। फिर अजीत सारी झिझक छोड़कर माला से पूछ बैठता है—'तुमने डायरी तो पढ़ ली। अब बताओ, मैंने ठीक कहा या ग़लत ?'

'बिल्कुल ठीक—सोलहो आने ठीक !'—फिर वही चिर-परिचित हँसी।

अजीत सर्द हो गया। हाथ की प्याली गिरते-गिरते बची। कोशिश करके भी एक प्याली से ज्यादा कॉफी न पी सका। मगर माला वैसी ही रही जैसे पहले थी—हँसती-हँसाती। सौंफ मुँह में रखकर दोनों ताँगे पर सवार हो बाज़ार की ओर चल पड़े। अजीत की मुद्रा गम्भीर—माला की व्यंग्य-भरी।

'आप इतनी छोटी बातों पर इस तरह परीशान क्यों हो जाते हैं ? दीदी और माँ का तो माथा खराब हो गया है जो अनाप-सनाप सवाल आपसे पूछती रहती हैं—फिर आप अपना माथा क्यों खराब करते हैं ? उनकी बातें एक कान से सुनिए,

दूसरे कान से निकाल दीजिए। इन सड़ी-गली बातों में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं। दीदी इतनी सुसंस्कृत होकर ऐसी बेतुकी बातें क्यों किया करती है—मुझे समझ में नहीं आता। आज उससे जरूर पूछूँगी।'

'नहीं-नहीं, तिल का ताड़ न बनाओ। मैंने बात जहाँ उठी, वहीं उसकी जड़ ही काट दी। अब आगे......।'—वह फिर तिलमिला उठा। आखिर उसने क्या कर दिया!

'तो फिर परीशान क्यों हैं? चुपचाप मौज से रहिए।'—माला ने दोनों भौं को सटाते हुए कहा।

अजीत चुप हो गया। हाँ, उसकी जबान तो सम्हल गई मगर उसका दिल न सम्हला। समस्या सुलझाते-सुलझाते चारों ओर के कठोर काँटों में वह और भी उलझता गया, उलझता गया—उलझ गया।

ताँगा जब बाजार में पहुँचा तो माला ने उसे रुकवाते हुए कहा—'चलिए, दो-चार चीजें खरीद लूँ। माँ ने माँगी हैं। और हाँ, दास कम्पनी से मेरे लिए एक मिजराब भी खरीद दें। बेला जो उस दिन मेरी मिजराब ले गई, आजतक लौटाने का नाम न लिया। आप तो छुट्टियों में दस बहाने बनाकर घर भाग जाएँगे, फिर मेरा तो एकमात्र सहारा सितार ही रह जाएगा।'

भागते किनारे

अजीत बाजार में माला के पीछे-पीछे छाया की तरह घूम रहा है मगर मन कहीं और ही रमा है। रह-रहकर सोचने लगता—यह माला भी जाने कैसी माला है! इसके फूलों को नई सजावट से गूँथकर जब भी मैं गले का हार बनाना चाहता हूँ, वे एकाएक बिखर जाते हैं!

कि किसी ने चट कहा—बिखरानेवाले तो तुम हो—तुम!

...सच?...हाँ-हाँ, एक नहीं, हजार बार सच!

माला के हाथों में दो निमन्त्रण-पत्र खेल रहे हैं। वह कभी एक को खोलती; मुस्कुराती-हँसती, उसे पढ़ती, फिर रख देती। फिर दूसरे को लेती; उसे भी पढ़ती—बार-बार पढ़ती—पढ़ते-पढ़ते गम्भीर हो जाती—सोचते-सोचते अन्यमनस्क-सी हो जाती। एक के कवर पर एक पुरुष तथा एक नारी की कोमल हथेलियों के मधुर मिलन का रंगीन चित्र है तो दूसरे के मुखपृष्ठ पर डोली पर बैठी नववधू की विदाई की छवि है। दुल्हा आगे-आगे चल रहा है और पीछे-पीछे शहनाईवाले सुर सम्हालते धीरे-धीरे चल रहे हैं। वहू शायद पालकी से झाँकती भी है—अपनी सहेलियों से मौन विदा ले रही है। पालकी पर उसकी आँखें कुछ क्षण को टिक जाती हैं—वहू के रूप में वह अपनी छवि देखने लगती है और दुल्हे के रूप में.......। आँखें भर आतीं—कभी-कभी फफक-फफक कर रो पड़ती जब उस निमन्त्रण-पत्र में अन्दर छपे सुन्दर-

सुनहले अक्षरों को पढ़ती—'अजीत और किरण के पावन-परिणय के शुभ अवसर पर—।'

क्या यह सच है?···हाँ-हाँ, सच है—सच! कठोर सत्य। उफ़!······वह निमन्त्रण-पत्र हाथ से छूटकर जमीन पर गिर जाता। फिर दूसरा निमन्त्रण-पत्र हाथ में आता। उसे खोल-कर पढ़ती—ठहाका मारकर हँस देती। कोई दूसरा देखता तो पागल समझता······ह-ह-ह-ह—यह कौन? राज बाबू? —नहीं-नहीं,—'श्री राजनारायण तथा सौभाग्यवती लता के शुभ विवाह के पुनीत अवसर पर······।' ···ह-ह-ह···कहो जीजी! आखिर तू भी कहाँ जाकर गिरी! नरक में भी ठेलाठेली! क्या सपना देखा था और क्या पाया!

'कहीं पे निगाहें—कहीं पे निशाना,
काफ़िर अदा की अदा है मस्ताना।'

ह-ह-ह। बड़ी घाघ निकली! चुपके-से शादी तय कर महल में बैठने की तैयारी कर ली। चलो, अच्छा ही रहा। जिस राजसी जीवन से तुम भागती थी वही तुम्हारे गले लगा। महल में बैठकर गहनों के बोझ से दब जाना, बाँदियों का हुजूम तुम्हें सदा घेरे रहेगा और नित नए-नए पकवान खाने को मिलेंगे; मगर जिन्दगी के उस स्रोत से, जो नित नए-नए फूल उगाता है—नई-नई प्रेरणा देता है, जो जीवन का रस है, उस

रस से तुम वंचित हो जाओगी। ज़िन्दगी का वह रहस्यमय स्पन्दन—वह पुलकमय प्लावन !

और अजीत बाबू ! आप भी खूब निकले ! कोई सूचना नहीं, कोई खबर नहीं—बस, एक दिन निमन्त्रण-पत्र ही आ गया ! ह-ह-ह—! काश हमें भी अपनी बहू को दिखाया होता—फोटो ही सही। मैं आपकी शादी काट तो न देती—फिर यह पर्दा क्यों ? यह दुराव क्यों ? मैं भी आपका भला चाहती हूँ—आपके सुख की चिन्ता मुझे भी है—फिर भी मुझे आपने अपना विश्वासभाजन न बनाया—ऐसी कौन-सी भूल हो गई मुझसे···क्या मैं इतनी भी······

उसकी आँखें भर आईं। दो-चार बूँद आँसू गालों पर लुढ़क गए। साड़ी के आँचल से उसने उन्हें पोंछ दिया।

कि माताजी ने पुकारा—'माला ! ओ माला ! कहाँ चली गई ? क्या अपनी शादी का सारा सामान लता ही करेगी ? तू हाथ न बँटाएगी ? सुबह से ही घर में जो घुसी तो अबतक बाहर न आई। अदौरी-तिलौरी बनानी है—अँचार भी लगाने हैं। जाने किधर चली जाती है !'—एक सुर में वह इतनी सारी बातें कह गई।

'आई माँ ! आई—अभी आई।' उसने वहीं से पुकारा और दौड़ती हुई आँगन में चली आई।

माता भी शादी की तैयारी में लग गई है। बारात का सारा सामान तो राज के परिवारवाले करेंगे। माताजी को तो केवल रूखी-सूखी किसी तरह खिला देना है।

'माता! हमारी इतनी औकात कहाँ कि राज की बारात का स्वागत करें! बस, घर पर अच्छा खाना खिला देना है। जो कुछ बची-खुची पूँजी है उसी में लगा देनी है। चलो, एक बेटी का तो भार उतरा। राज ने मेरी लाज रख ली। बड़ा भला लड़का है। युग-युग जिए मेरा राज! लता बेटी रानी बनेगी—रानी!....'

'हाँ माँ, सोने-चाँदी से लद जाएगी वह। घर में दूसरा और कोई नहीं—बस, एक बूढ़ी सास। समझो, दीदी का ही एकछत्र राज रहेगा।—ह-ह-ह। रानी क्या, पटरानी बन जाएगी! ह-ह-ह।'

'अजीत को निमन्त्रण मिल गया होगा। उसे अब मालूम हो गया होगा कि जिसे उसने ठुकराया वह अब रानी बनने जा रही है—रानी! मेरी लता के भाग्य को विधाता ने अपने हाथों सँवार दिया है। देखो, ऊँची हवेली में जाकर बैठी। जय बाबा विश्वनाथ!'

'........................'

'और यह अजीत कैसा निकला! मैं तो हैरत में हूँ। कोई

जिक्र तक नहीं। चुपके-चुपके शादी तय कर ली। मैं तो उसे भला समझती थी। मगर वह तो बड़ा चालू निकला…।'

माला चुप है। लता जुल देती है—

'हमें भी तो कुछ बताया होता। रोज हमारे यहाँ आता, हम उसे परिवार का एक सदस्य मानते रहे, मगर उसने तो अपने को पूरा दगाबाज साबित किया। माँ, तुम्हें तो मेरी बात पर विश्वास ही न होता था। मैं तो उसे बराबर एक बड़ा चालबाज व्यक्ति समझती थी।'

'हाँ, मेरी आँखों पर परदा पड़ा था। उसने हमलोगों से बताया क्यों नहीं? आखिर हम शादी काट तो नहीं देते! छीः—छीः।'

माला चुप है। यशोधरा की तरह कुहुक रही है, कराह रही है, मन-ही-मन गुनगुनाती—'सखि! वे मुझसे कहकर जाते। !'

माँ और दीदी की इन शिकायती बातों को सुनते-सुनते और अजीत की ऐसी अप्रत्याशित उपेक्षा पर सोचते-सोचते वह ऊब गई और एकाएक अपने कमरे में जाकर सितार लेकर बैठ गई। कोई गत बजाने की चेष्टा की, पर निष्फल रही। न जाने क्यों आज सितार के तार भी रूठ गए हैं। उनमें कोई बोल नहीं, कोई जान नहीं। ऐसा क्यों—ऐसा क्यों? सभी तार

बेजान ! सभी बोल बेजबान ! घर की दीवारों से, सितार के तारों से, बस एक ही गूँज गूँज रही है—'सखि ! वे मुझसे कहकर जाते !' वह कान बन्द कर छत पर दौड़ गई। कहीं कुछ दिखे नहीं, कहीं कुछ सुने नहीं। मगर दिग्दिगन्त से, विश्व के ज़र्रे-ज़र्रे से बस एक ही गूँज गूँज रही है,—और वह है—'सखि ! वे मुझसे कहकर जाते !'

'सखि !..................।'

माला के हाथों में फिर दो निमन्त्रण-पत्र खेल रहे हैं। एक में लता और राज की शादी का सन्देश है और दूसरे में किरण और अजीत की। वह दोनों को बार-बार पढ़ती, आँखें फाड़-फाड़ कर पढ़ती, पढ़ती ही रह जाती। '...किरण ! तुम कौन हो ? तुमने पहले नहीं बताया कि अजीत बाबू की जीवन-संगिनी तुम होने जा रही हो। मैं तुम्हें अपने हाथों सजाती, अपनी छाती से लगाकर अजीत बाबू की सारी बातें तुमसे बताती। तुम्हें बताती कि अजीत बाबू को क्या पसन्द है और क्या नापसन्द। उन्हे कौन-सा खाना रुचता है और कौन-सा नहीं। कब कैसा मूड रहता है। कब ठहाका लगाते हैं और कब माथापच्ची करने लगते हैं। उनसे वर्षों की जान-पहचान से मैं सब जान गई हूँ। मगर तुम्हें यह सब अभी सीखना होगा, जानना होगा।—बाद्यों में सितार, राग-रागिनी में

जैजैवन्ती, फूलों में जूही, फलों में आम, मिष्टान्न में कलाकंद, मौसम में बरसात की रात, लेखक में शरत्, सिनेमा में देवदास। मन से निश्चल, हृदय से विशाल। और सुनोगी? चटपटी चीज़ों से खास शौक़, छिपकिली से भयानक डर और किसी कोमल गले से निकली हुई स्वर-लहरी पर बेहद आकर्षण!

पगली-सी वह इतनी सारी बातें हँसती-हँसती कह तो गई, परन्तु परकटी कबूतरी की तरह तड़पती रही, बिलखती रही। आज उसे जान पड़ रहा है कि उसका अब कोई सहारा नहीं, कोई ठौर नहीं। उसके पास किसी का प्यार नहीं, किसी का सद्भाव नहीं। बिना छाँव की जिन्दगी भी कितनी दर्दनाक होती है—कितनी खौफनाक! और, जिस राहगीर को एक बार छाँव मिलकर दूर सरक जाए, जिस दिलदार को एक बार प्यार मिलकर चिलट जाए, जिस प्यासे को सोता मिलकर सूख जाए, उस अभागे की क्या गति हो, क्या मति हो—यह कोई क्या कहे, कैसे कहे!

✣

प्रिय माला,

मेरे विवाह के निमन्त्रण-पत्र को पाकर तुम्हारी क्या प्रतिक्रिया हुई होगी, मैं इसकी कल्पना से ही काँप उठता हूँ। निमन्त्रण-पत्र डाक में छोड़ देने के उपरान्त मैं यह बराबर चाहता रहा कि वह किसी तिलस्मी करिश्मे से तुम्हें मिल न पाता। काश! लेटर-बक्स तूफ़ान में उड़ जाता या डाकिए के बैग से वह निमन्त्रण-पत्र खो जाता। परन्तु ऐसा न हुआ होगा, वह तुम्हें मिला जरूर होगा। अशुभ सूचनाएँ किसी-न-किसी जरिए जल्द मिल ही जाती हैं। किसी की मृत्यु की खबर बिजली की तरह दिग्-दिगन्त में फैल ही जाती है। मेरी कहानी कोई लम्बी कहानी नहीं है। 'दो लफ्ज़ों में पोशीदा, बस मेरी कहानी है।'

घर में क़दम रखते ही मेरे पुराने नौकर रामभजन ने मुझे छाती से लगाकर कहा—'अज्जु! आज मेरा सपना

साकार होने जा रहा है। यह दिन देखने के लिए ही शायद मैं जी रहा था! लो, तुम्हारी शादी तय हो गई। फलदान चढ़ाने के लिए पण्डितजी आज तुम्हारे साथ-ही-साथ ट्रेन से उतरे हैं।'

मेरा कलेजा धक्-धक् करने लगा। फिर भाभी और माँ मुझसे लिपट गईं। यह शादी अब टल नहीं सकती। इसे होना ही है। उधर भाभी के रिश्तेदार की लाज रखनी है और इधर माँ के ढलते जीवन का भी ख्याल करना है। तो समझी, अजीत बाबू की एक न चली। रात्रि में आँगन पूर कर मुझे वहाँ बिठाया गया और मंत्रोच्चार के साथ-साथ पंडितजी ने मेरे हाथ में एक चाँदी का कटोरा, पाँच गिन्नियाँ तथा कुछ अक्षत इत्यादि रख दिए। बस, समझो इश्तहार बँट गया और दूसरे ही दिन से विवाह की तैयारी में घर भर जम गया।

नाटक के दृश्य की तरह एक-एक दृश्य आए और निकलते गए और मजा यह कि मैं उस खेल का दर्शक भी था और उसके रंगमंच का खिलाड़ी भी। जब मैं रंगमंच पर अपना पार्ट अदा करता तो सुनता कि कोई मुझसे चुपके-चुपके कह रहा है—माला ने ही तो कहा था—'सोलहो आने सच—हाँ, हाँ, सच।' मैं चौंक कर भी शान्त हो जाता।···फिर एक दिन वह

भी आया जब मेरी चादर की गाँठ में एक नववधू का प्यार, उसकी मान-मर्यादा, यानी उसका सर्वस्व बाँध दिया गया ! उस रात मेरी लरजती हुई उँगलियों में न फूल की माला टिक पाती थी, न आरती की शिखा। मेरी रंगीन चादर उस गाँठ के बोझ से रह-रहकर मेरे कंधे से गिर पड़ती कि मेरी सालियाँ उसे उठा कर फिर कंधे पर रख देतीं और मुझे चेतावनी देतीं कि यह शुभ गाँठ-बन्धन है—कंगन खुलने के दिन तक ऐसा ही बँधा रहे, जरा चादर पर विशेष ख्याल रखें। मगर जितना ही मैं चाहता कि यह चादर जमीन पर गिर जाय या वह गाँठ खुलकर बिखर जाय कि उतना ही वह मुझसे बँधता गया और अन्त में मेरी सास के इसरार पर वह चादर मेरे गले में फंदे की तरह बाँध दी गई, ताकि रस्मों की भीड़ से बार-बार वह जमीन पर न गिरे। ......तो यह कहानी मेरे बँधने की रही।

इस बन्धन की प्रतीक किरण से मुझे उस रात दर्शन कराया गया जिस रात इन तमाम रस्मों की समाप्ति हो रही थी। मेरे रंगीन पलंग पर सुनहरे तार तथा रंगीन फूलों की भरमार थी तथा मेरा वह छोटा प्रकोष्ठ तरह-तरह के इत्रों से सुवासित था। किरण को सजा-बजाकर मेरे सामने रख दिया गया था और मुझे माँ ने यह फरमान दिया था कि उसे एक

हीरे की अँगूठी पिन्हाकर हर तरह से खुश करने की चेष्टा करूँ।

मुझे अन्दर जाते ही घुटन होने लगी—रंगीन बन्द कमरा - यानी रंगीन सीलिंग, रंगीन दीवारें, रंगीन पंखा, रंगीन परदे, रंगीन पलंग, रंगीन कपड़े, रंगीन बहू—इतना सब रंगीन था कि सब बदरंग लग रहा था। इत्रों की गन्ध से नाक भिन्ना उठी। मैंने झट खिड़की खोल दी और बाहर की ठंडी हवा ने मुझे राहत पहुँचाई। दूर-दूर तक फैली हुई सफेद धप्-धप् करती चाँदनी को देखकर जब मैं पलटकर लहालोट किरण को देखता तो जीवन के जाने कितने पत्त उभर आते और मुझे ऐसा प्रतीत होता कि आग की लपटों से धू-धू करते इस कंगूरे से कूदकर यदि बाहर बहती हुई दूध की धार में समा जाऊँ तो शरीर के फफोले शान्त हो जाएँगे। परन्तु यह देखो, किरण ने मुस्कुरा दिया—'आप बड़े परीशान जान पड़ते हैं!···हाँ, गर्मी बहुत है।···आइए, इधर बैठिए, मैं पंखा झल देती हूँ।' किरण ने सीलिंग में टँगे हुए पंखे की डोरी पकड़ ली। कुछ राहत हुई—कुछ लाज भी छूटी—कंठ से वाणी भी फूटी ·····

जाने क्यों वह रात बड़ी लम्बी रही। मैंने चाहा, रात जल्द कटे। इसीलिए किरण को कहानी भी सुनाना शुरू किया—

किरण का बड़ा मनोरंजन हुआ और अन्त में उसने हँसते-हँसते कहा भी—'बड़ी दिलचस्प कहानी है—ऐसी सुन्दर माला को कौन न गले से लगाना चाहेगा! मेरी छाती से वह बराबर सटी रहेगी।

आँखें झिपीं-खुलीं, खुलीं-झिपीं कि भोर हो गया। मैं घड़फड़ा कर उठा हूँ तो देखा, किरण जाने कबसे मेरी छाती में समाकर गहरी नींद सो गई है—इतनी गहरी, इतनी निश्चिन्त कि जैसे आज से मैं ही उसकी तमाम परीशानियों, तमाम उलझनों को हरनेवाला शिव हूँ और वह पार्वती मेरी जटा में बँधे हुए सर्प के फुफ्कार की तनिक भी परवाह न कर उसकी बगल में ही जगमगाते हुए शशि से खेल रही हो। इस दृश्य को देखकर किसकी छाती से करुणा न फूट पड़ती!....'

मैं कमरे में टहल रहा हूँ और गुनगुना रहा हूँ—'हलाहल पी जाता संसार।'

कि किरण उठ गई—अपने अस्त-व्यस्त कपड़ों को ठीक कर मेरी ओर हँसती हुई देखने लगी—

'क्या गुनगुना रहे हैं?'

'वही, बच्चन की प्यारी पंक्तियाँ...

इसी मधु का लेने को स्वाद,
हलाहल पी जाता संसार!'

'ओ, तो आपको कविता सूझ रही है ! हाँ, देखिए, रात की गर्मी शान्त हो गई और बड़ी सुहानी हवा चल रही है ।' वह मुस्कुरा उठी ।

'हाँ, कहो, कैसी नींद आई ?'

'बड़ी गहरी । स्वप्न में माला को देखती रही—उससे बातें भी करती रही ।'

'बड़ी जल्दी दोस्ती लगा ली—'

'हाँ, अब जी चाहता है उससे मिलने का ।'

'हाँ, एक दिन उससे मिलने काशी चलेंगे ।'

उसके चेहरे पर हँसी नाच गई । मैं भी ख़ुश हुआ । ·····तो समझो, यही मेरी कहानी है ।

···हाँ, लताजी के विषय में तो पूछना भूल ही गया । लाख कोशिश करने पर भी मैं उनकी शादी में नहीं आ सका । लिखना, कैसी रही । आशा है, सब ख़ुशी-ख़ुशी निभ गई होगी । माताजी को प्रणाम ।

सस्नेह,

अजीत

✣

प्रिय अजीत बाबू,

दीदी की शादी की मिठाइयाँ अभी खत्म भी न हुई थीं कि आपकी शादी की मिठाई तथा पत्र मिला। धन्यवाद! किरण-ऐसी बहू को पाकर भी आपने मुझे याद किया—इस बात की कल्पना से ही मैं नाच उठी।

दीदी की शादी बड़े मज़े में हो गई। कोई झंझट न रही—कोई तूल न हुई। जिसके पास पैसे होते हैं, वे टीमटाम करते हैं—यहाँ तो महज़ रस्म की तामीली थी। हाँ, वर-पक्ष से कोई बदगुमानी न हुई। दीदी बड़ी खुश थीं—खूब प्रसन्न। मगर मुझे पग-पग पर आपके लिए ताने सुनने पड़ते रहे—जैसे मैं ही आपकी सब कुछ हूँ। ताने सुनते-सुनते मैं तो तार-तार हो गई—इतनी ऊब गई थी कि कहीं भाग जाने का मन करता रहा। परन्तु, भागकर जाती कहाँ?....

और तो और, आपके प्रिय मित्र और मेरे जीजाजी की भी आपकी ओर से नजर कुछ मैंने बदली-बदली पाई। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु इस संसार में सब कुछ सम्भव है।

शादी आई और चली गई, परन्तु घर को कर्ज के भार से दबा गई। हमारे पास इतनी पूँजी न थी कि हम उस भार को सँभाल सकते। बस, बिखर गए। अब माँ कहती है—'बेटी, पढ़ाई छोड़ दो। अब तुम्हारी शिक्षा का भार भी नहीं उठा सकती। घर पर ही 'प्राइवेट' पढ़ो। फिर देखा जाएगा।' मैं परीशान हूँ। दीदी और आपके जाने के बाद यह घर मुझे काट रहा है। अकेली पड़ी-पड़ी मैं पागल हो जाऊँगी। यदि आप उस दिन मिजराब न खरीद देते तो आज मेरी क्या हालत होती? आज तो मेरा एकमात्र वही सहारा है। जब जी ऊबता है तो सितार उठा लेती हूँ। कोई गत बजाकर दिल को शान्त करती हूँ। परन्तु, यह सितार कितने दिनों तक मेरा सहारा होगा—राम जाने! यदि कालिज जाती तो दिन भर की ऊब से जान बचती। घर में कर्ज से भरी दम घोटती हवा में न तो सितार बजा पाऊँगी और न पढ़ ही सकूँगी। देखिए, क्या होता है! माँ से पढ़ने के लिए पैसे कैसे माँगू? बेचारी कहाँ से लाएगी? मैं तो 'प्राइवेट ट्यूशन' कर लेती, मगर माँ दूसरे के घर में जाकर पढ़ाने को तैयार.

नहीं होती। कहती है—जवान हुई, कालिज में जाना और है, किसी अनजान घर में जाना और।

कुछ समझ में नहीं आता। भविष्य अन्धकारमय दिखता है।—कभी-कभी दर्शन देने की कृपा करेंगे। किरण बहन से मिलने की बड़ी लालसा है। सौभाग्यवती किरण का सौभाग्य अचल रहे—यही मेरी शुभकामना है।

आपकी,

माला

किरण, अजीत और भाभी जब सुबह के नाश्ते पर बैठे थे तो डाकिये ने आकर यह खत दिया। अजीत माला के अक्षरों को पहचानता था। उसने चट लिफाफा खोलकर पढ़ना शुरू किया तो भाभी ने टोका—'बड़े तन्मय हो खत पढ़ रहे हैं—छोटे बाबू! किसकी मुबारकबादी है?'

'नहीं भाभी, यों ही……।' वह पढ़ता ही गया। पढ़ते-पढ़ते उसका चेहरा उदास हो गया। नाश्ता करने से भी जी उचट गया।

भाभी चली गई तो किरण ने पूछा—'चाय बनाऊँ?'

'नहीं, एक गिलास ठण्डा पानी ही पिलाओ।'

'नहीं-नहीं, चाय तो बन गई है।'

'तो लाओ।'

अजीत एक सिप चाय पीता फिर खत दुबारा पढ़ने लगता।

किरण अभी-अभी नहा-धोकर, शृंगार-पटार कर, नई-नई दुल्हन की साज-सज्जा में बैठी बड़ी साफ-साफ-सी सुन्दर-सुघर दिख रही है। कलाई से लेकर किहुनी की दीवार तक लाल-लाल रेशमी चूड़ियाँ तथा माथे पर लाल बिन्दी, चमचमाती टिकुली—उसके सहज शृंगार में चार चाँद लगा रही हैं। परन्तु अजीत की आँखें इन्हें न देखकर कागज के अक्षरों पर ही बार-बार नाच रही हैं। अपनी चंचल लटों को सँभालती हुई किरण ने पूछा—'किसका खत है?'

'माला का......।'—अजीत ने चिट्ठी किरण की गोद में फेंक दी और ठंढी चाय का सिप लेने लगा।

'कोई खास बात है?'

'क्या बताऊँ,—बड़ी बुरी हालत है उसके परिवारवालों की। एक ही बेटी की शादी में घर बिखर गया। कुछ पूँजी तो थी नहीं, कर्ज के बोझ से दब गए। मारी गई बिचारी माला—पढ़ाई भी छूट गई।'

'यह तो बड़ा बुरा हुआ।'

'हाँ, खत पढ़ो ना।'

किरण पत्र पढ़ती है—गम्भीर हो जाती है। कहती

है—'क्या बताऊँ, ऐसी स्थिति देखकर बड़ा दुख होता है। बड़ी बेबस हो गई बेचारी। इस देश की अजीब हालत है। फूटती कोपलें शिक्षा के अभाव में मुर्झा जाती हैं।....'

'और यहाँ की शादियाँ भी तो बहुत घरों को तबाह कर देती हैं। नहीं करते-करते भी टीमटाम का ताँता टूट नहीं पाता। शादी में सादगी का संचार नहीं किया जाएगा तो कितने घर बर्बाद हो जाएँगे।'

'हाँ, देखा नहीं, हमारी ही शादी में पैसे की कितनी बड़ी बर्बादी हुई है! यह रस्म तो वह रस्म, यह मुँह-दिखाई तो वह पाँव-लगाई! क्या तबाही होती है—यह तो कोई बेटी के बाप से पूछे। और, बरातियों के तान-तेवर के तो क्या कहने! पग-पग पर उनके कदमों की धूल न चाटो तो धूल फाँको, धौंस सहो। मुआ कोई न तेल की शीशी लाता है न साबुन। कितनों के तो तौलिया गायब। और तो और, जिसे कभी घी देखने को भी नसीब न हुआ वह भी चाहता है कि उसके कमरे में घी के दिए जलाए जाएँ, ओठ और उँगलियाँ घी से तर रहें। मेरे पिता को जो परीशानी हुई है—वह वही जानते हैं—उफ़! और मजा यह कि कोई भी पक्ष सन्तुष्ट नहीं। इतना करने पर भी सभी रुष्ट ही रहते हैं। बात यह है कि दोनों ओर से एक-दूसरे के प्रति प्रेम तो रहता नहीं—

बस, दोष निकालने में ही लगे रहते हैं।'

'तुम ठीक कहती हो—ग़रीब देश के लिए 'सिविल मैरेज' ही एकमात्र निदान है। आध घण्टे में ही चट मँगनी, पट ब्याह। रात में दो-चार दोस्त-अहबाब खा-पी लिए, हँस-गा लिए। बस— ।'

'ख़ैर,……यह बताइए, माला का क्या होगा ?'

'आज ही तुम उसे एक पत्र लिख दो कि मैं जल्द ही काशी जाऊँगा और प्रिंसिपल से मिलकर उसे भी कराने की कोशिश करूँगा। तबतक वह अर्ज़ी तो भेज दे, वर्ना समय बीत जाने पर कुछ न हो सकेगा। आजकल कालिज में नाम लिखा लेना, आसमान से फूल तोड़ लेना है। मैं बाहर कुछ लोगों को विदा करने जाता हूँ—तुम अभी लिख दो।'

किरण के चेहरे पर हर्ष और विषाद की दो समानान्तर रेखाएँ दौड़ गईं। कौन गहरी, कौन हल्की—कौन जाने ! मगर ऐसा क्यों ? आखिर क्यों ??

'क्यों माला, तुमने एडमिशन के लिए दरख्वास्त भेजी या नहीं ?'—अजीत ने माला के कमरे में प्रवेश करते हुए पहला सवाल पूछा।

माला सितार बजा रही है। अजीत को देखते ही चौंक गई और सितार रखकर खड़ी हो गई। पतली-पतली-सी वह कुछ अजीब लग रही है।

'ओ,...आप !...आप कब आए ?'

'बस, अभी-अभी चला ही आ रहा हूँ। स्टेशन से सीधे। किरण भी आना चाहती रही मगर घर पर अभी रिश्तेदार टिके हैं, इसलिए छोड़ दिया—'

'उनसे मिलने की बड़ी लालसा है।'

'वह लालसा जल्द ही पूरी होगी।'

'..................................'

'मगर तुम कैसी हो गई हो ?'

'जैसी थी—वैसी ही हूँ।···क्यों···?'

'नहीं, जैसी रही, उससे बिल्कुल भिन्न। यह दुबली-दुबली काली-काली लकीर-सी।'

'हाँ, इधर कुछ बीमार रही—बस, यों ही।'

'इतने दिनों बाद तुमसे मिलने आया। सोचा था, तुम्हें बहुत ख़ुश पाऊँगा, ; मगर यहाँ तो—.'

अजीत चुप हो गया—चिन्तित-सा। माला नहीं चाहती थी कि उसे कोई दूसरा परखे—उसने झट हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—'नहीं-नहीं, मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ। आप भी कैसी बातें करते हैं!'

परन्तु वह अभिनय ठीक-ठीक नहीं कर पाई। मालूम होता था, अब रोई—तब रोई।

'हाँ, क्या किया ऐडमिशन का?'

'अर्ज़ी दे दी है। उम्मीद है, हो जाएगी। मगर, आपने फ़िज़ूल ज़िद पकड़ ली। ऐडमिशन हो जाने से ही तो बेड़ा पार हो नहीं पाएगा—आगे का खर्च कैसे चलेगा?'

'पहले नाम तो लिखा जाय, फिर वह मंजिल भी तय होगी।'

अजीत फिर चुप हो गया। घर के चारों ओर नजर दौड़ाई। देखा, हर कोने में—हर दीवार पर एक सूनापन छा

गया है। सब रीता-ही-रीता दिखता है। लगता है, घर की सारी पूँजी ही शादी में समाप्त हो गई।

'कौन है माला ?'—माताजी ने पुकारा।

'अजीत बाबू आए हैं, माँ !'

'ओ, कौन ? अजीत ?—दुलहिन मुबारक हो बेटा ! छिपे-छिपे शादी कर ली और हमें एकदम अन्त में खबर दी।'—कमरे में प्रवेश करते हुए माताजी ने कहा।

'प्रणाम ! हाँ, कुछ ऐसी चटपट हो गई कि क्या बताऊँ ! मुझको खबर होती तब तो आपको पहले खबर दे पाता !' अजीत ने झेंपते हुए कहा।

'कहो, बहू कैसी है ?'

'मैं क्या जानूँ ! आप किसी दिन खुद देख लीजिएगा तो कहिएगा आपको अच्छी लगी या बुरी। आखिर अच्छाई और बुराई तो सब आँखों का खेल है।'

'हाँ, यह तो ठीक है, मगर तुम्हें पसन्द आई या नहीं ?'

'जब शादी हो गई तो पसन्द ही आ गई।' दोनों हँस पड़े।

'माँ, लताजी की शादी तो खुशी-खुशी हो गई न ?'

'हाँ बेटा ! भगवान की बड़ी कृपा रही। सब पार लग गया। मगर मैं तो छूछी हो गई। सब पैसे खर्च हो गए।

अमीरों से हमारी क्या रिश्तेदारी, मगर राज बाबू का यह बड़प्पन कि हमें उबार दिया। लता राज़ी-ख़ुशी है—बराबर ख़बर मिलती रहती है······अब पारसाल माला को भी ब्याह दूँ तो छुट्टी पा जाऊँ। तभी मुझे सच्ची शान्ति मिलेगी।' माताजी ने बड़ी नम्रता से कहा। अजीत ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह फिर कहती गईं—

'माला अभी पढ़ना चाहती है—मैं भी चाहती हूँ कि शादी तक पढ़ती रहे—मगर पैसे कहाँ, जो पढ़ाऊँ!····।'

'माताजी, इसका ऐडमिशन तो कराइए। मैं अपने प्रोफेसर साहब से कहकर इसे फ्री करा दूँगा।'

'फ्री होने से ही तो काम न बनेगा बेटा!'

'देखिए, किसी फंड से कुछ पैसे दिलवाने की भी कोशिश करूँगा—आप अभी ही हिम्मत क्यों हारती हैं? आपने इससे भी बुरा समय देखा है।'

'कुछ समझ में नहीं आता।'

माताजी फिर चौके में चली गईं तो माला ने पूछा—'आप ठहरे कहाँ हैं—सामान नहीं देखती हूँ।'

अजीत मुस्कराने लगा।

'क्यों?·······'

'मैंने एक नौकरी कर ली है। काशी के समीप एक

कारखाने में। अच्छे पैसे मिलेंगे और अपने मन का काम सीखने का मौक़ा भी मिलेगा।'

'नौकरी ?'—माला को बड़ा आश्चर्य हुआ।

'हाँ-हाँ……।'

'और…रिसर्च…?'

'जिन्दगी के सभी सपने पूरे नहीं होते माला! बीबी घर में अनायास ही आ गई। मैंने सोचा—उसे घर पर अकेली कहाँ छोड़ूँ? फिर प्रतिदिन भैया-भाभी और माँ से पैसे माँगना गवारा न होता। बड़ी जलालत थी। इसलिए पैसे कमाना आवश्यक हो गया।'

अजीत ने बीच में ही पढ़ाई छोड़ दी—यह जानकर माला को बड़ी चोट लगी। अजीत की जैसे दुनिया ही बदल गई। माला अवाक् है।

'हाँ, तो उसी कम्पनी का काशी में एक 'गेस्ट हाउस' है, आज वहीं ठहर रहा हूँ मैं। साथ में कम्पनी के और लोग आए हैं। वे ही स्टेशन से वहाँ सामान ले गए हैं।

माला चुप है। क्या से क्या हो गया! सारी सृष्टि ही बदल गई जैसे।

सन्ध्या समय अजीत राज के घर पहुँचा। पता चला, राज बाबू अभी भी शयन-कक्ष में हैं। पहले सोचा लौट जाएँ।

फिर सोचा—अब मिलकर ही जाएँ। कभी-न-कभी रईसे-आज़म नीचे उतरेंगे ही। उसकी जान-पहचान के नौकर उसे घेरकर घर का कुशल-क्षेम पूछने लगे। उसने भी शिवटहल से पूछा—'कहो, बड़े बाबू की शादी बड़ी चुपचुप हो गई!'

'वाह भइया! हमीं से मज़ाक करते हो? आग तो तुम्हीं ने लगाई, अब बात बनाते हो? माताजी तुमपर बड़ी नाराज़ रहीं।'—शिवटहल ने मटकी मारी।

'वाह! मुझे तुमलोग मुफ्त में बदनाम कर रहे हो। मुझे कहाँ पता कि यह गुल खिल रहा है!'

'तुम्हें सब पता रहा गुरुघंटाल!'

'नहीं, सच मानो शिवटहल!'

'अब बात बनाने से फ़ायदा? जो होना था, सो हो गया। माँजी ने बड़ी मुँह की खाई। बड़ी हवेली में शादी करना चाहती रहीं, मगर इकलौता बेटा ज़िद पकड़ गया तो क्या करतीं?'—शिवटहल ने फिर मुस्कुरा दिया।

अजीत ने सोचा कि उठकर चल दे—माताजी के मिज़ाज से वाक़िफ था वह—मगर अब जाना अच्छा न होगा—इसलिए दिल मसोसकर बैठ गया।

कुछ देर बाद राज बाबू 'स्लीपिंग-सूट' पहने नीचे उतरे।

'वाह, तुम हो? कब आए?'—राज ने अजीत से हाथ मिलाते हुए कहा।

'आज ही आया। सोचा, तुमको बधाई देता जाऊँ!'

'हाँ-हाँ, बड़े छिपे-रुस्तम निकले यार! किसी को कानों-कान खबर भी नहीं और शादी हो गई!'

'हम छिपे-रुस्तम निकले कि तुम? रात-दिन साथ रहे, मगर ऐसे उस्ताद हो कि कुछ पता ही न चला।'

'हाँ-हाँ, समझो—दोनों ही छिपे-रुस्तम निकले।'—राज ने व्यंग्यभरी निगाहों से उसे देखकर हँसना शुरू किया—दो-चार मिनट तक हँसता ही रहा। यह हँसी अजीत को अच्छी न लगी। मगर करता क्या?

'इधर कैसे आना हुआ? अभी तो छुट्टी काफ़ी बाकी है?'

'यों ही चला आया······मैंने अब नौकरी कर ली है। उसी सिलसिले में काशी आना पड़ा इस बार।'

'नौकरी? यह अच्छी रही!······हाँ, माताजी और माला से भेंट की?'

'हाँ, वहाँ भी गया था।'

'दोस्त! तुम चूकते नहीं'—राज फिर एक बार व्यंग्य की हँसी हँसने लगा। अजीत कुछ सहम गया। उसे माला की बातों पर विश्वास हो आया। उता ने राज के भी कान

भर दिए हैं और अब उसमें वह आत्मीयता, वह सामीप्य नहीं है जो पहले था।

'कुछ नाश्ता-पानी—शरबत-पान ?'

'नहीं भाई, इस समय कुछ भी नहीं। पेट भरा है।'

राज ने कुछ मिनटों तक इधर-उधर की बातें कीं। फिर उठ गया और बोला—'अजीत! मुझे लता को लेकर क्लब जाना है। एक पार्टी है—इस बार क्षमा करना।'

'हाँ-हाँ, तुम जाओ। मैं तो यों ही चला आया था।'

'धन्यवाद' कहता राज कोठे पर चला गया और अजीत अपने रास्ते की ओर।

✥

'बधाई माला! बधाई! लो, तुम्हारा नाम युनिवर्सिटी में लिखा गया। मिठाइयाँ खिलाओ!'— अजीत ने माला को झकझोरते हुए कहा। माला चौंक गई और माताजी भी आश्चर्यचकित हो गईं।

'बड़ी तेजी की तुमने बेटा! मैं तो अभी पैसे ही जुटा रही थी कि तुमने नाम भी लिखा दिया। आखिर इतनी जल्दी ही क्या थी?'

'माताजी! इस साल जाने क्यों बहुत दरख्वास्तें पड़ी हैं। सोचा, आज ही नाम न लिखवा दूँ तो फिर बना काम बिगड़ जाएगा। पाकेट में पैसे थे, देकर तत्काल काम करा लिया। आप मुझे पैसे जुटाकर लौटा देंगी। आखिर इसमें हर्ज ही क्या है?'

'हाँ, हर्ज तो कुछ नहीं है मगर फिर भी तुम्हारा कितना एहसान लूँ?'

'माताजी ! फिर आप तकल्लुफ़ करने लगीं। काम से काम है—पैसे तो मुझे आपसे आज न कल मिल ही जाएँगे।'—अजीत ने माताजी को बड़ी नम्रता से समझाते हुए कहा।

माला का हृदय आज बल्लियों उछल रहा है। डूबते को एक सहारा मिल गया—घोर अन्धकार में आशा की एक हल्की किरण दिख गई। माताजी कुछ इधर-उधर की बातें कर जब चौके में चली गईं तो माला ने बड़ी आजिजी से कहा—'अजीत बाबू, मैं आपकी चिरऋणी रहूँगी। आपने मुझे एक नई ज़िन्दगी दे दी, वर्ना मैं तो निराश ही हो चुकी थी। उम्मीद है, समय अब आसानी से कट जाएगा। दीदी भी चली गई, आप भी चले गए, अब तो घर काटने दौड़ेगा—यदि इतना भी न होता तो······।'

'तुम चिन्ता न करो माला ! हर परिस्थिति में अपने को ढालने की क्षमता रखो। मनुष्य के पास अक्षुण्ण दैवी शक्ति है। आखिर आनन्द भी मन की एक स्थिति ही तो है।' अजीत इतना कहकर सहसा रुक गया।

माला चुप है। उसकी सूरत पर उभरती हुई विविध रेखाएँ प्रश्न और उत्तर दोनों का काम कर रही हैं।

कुछ क्षणों की चुप्पी के बाद माला ने फिर पूछा—'मगर पुस्तकों का क्या होगा ?'

अजीत ने मुस्कराते हुए अपनी अटैची खोल दी और हँसते हुए कहा—'ये रहीं तुम्हारी नई पुस्तकें। कुछ तो मैंने नई खरीद ली हैं—कुछ सेकन्ड-हैंड मिल गईं और कुछ दोस्तों से ले लीं।'

माला खुशी से नाच उठी और कुछ-एक किताबों को हाथ में लेती हुई बोली—'सच, वाह, आपने तो मेरे लिए सारा प्रबन्ध ही कर दिया। बहुत-बहुत धन्यवाद।'

माला अटैची से एक-एक किताब निकालती, पन्ने उलटती, दो-चार पंक्तियाँ पढ़ती, बड़े कौतूहल से कुछ अजीत को सुनाती, फिर रख देती और बोलती—'किताबें बड़ी प्यारी हैं, पर स्तर बहुत ऊँचा है। बड़ी मिहनत करनी पड़ेगी मुझे। हाँ, जहाँ समझ में नहीं आएगा, आपको पकड़कर बुलवाऊँगी और आपको आना और समझाना होगा। समझे जनाब! जी, हाँ!··· मगर, आप तो मीलों दूर·······।'

'कोई बात नहीं। एक कार्ड डाल देना, मैं सर के बल चला आऊँगा।'

'यह भी अच्छी रही! न-न यह न हो सकेगा····।'

फिर दूसरे ही क्षण उसकी सारी जिन्दादिली, सारी हँसी उड़ जाती और वह अनमनी-सी हो जाती तो अजीत कहता—संगीत के लिए मैंने कोई किताब नहीं खरीदी। किताबों से

ज्यादा तो तुम खुद जानती हो। फिर सितार तुम्हारे पास है ही। खूब रेआज करना और सौ में सौ पाना।'

वह हँस देती—'भई, रेआज करने में मन लगे, तब तो!'

'मन तो लगाने से लगता है माला! तुम लगी रहो तो वह लगते-लगते लग जाएगा, रमते-रमते रम जाएगा।'

'हाँ, कोशिश तो यही है।'

माला का मूड बनता-बिगड़ता रहता। जब वह उदास हो उठती तो अजीत बातें बदल देता—'माला! कल मैं राज के घर गया था मगर उसका व्यवहार पहले जैसा न लगा। बड़ा कटा-कटा-सा रहा। वह आत्मीयता, वह निकटता जाने कहाँ भाग गई और बीच में एक खाई—एक दूरी जैसी कोई चीज उभर आई है। लता ने तो भेंट भी न की। कहीं क्लब जाने की तैयारी रही होगी।'

'दीदी आपके नाम से जलती है।'

'क्यों?'

'क्योंकि आपने उसे ठुकरा दिया!'

'मगर अब तो उसकी शादी एक ऊँचे घराने में हो गई। उसे कोई मलाल न होना चाहिए।'

'मगर आपने उसके मान पर करारी चोट दी थी, जिसे वह सहन न कर सकी—आज भी भूली नहीं है और शायद

कभी भूले भी नहीं। उसके स्वभाव से आप परिचित हैं। आग है—आग !'

'यह तो उसकी जबर्दस्ती है।'

'जो भी हो, परन्तु वह आपको कभी माफ़ न करेगी। और, शायद इसी आन में उसने राज से शादी भी कर ली। वह राज को कभी वैसा चाहती न थी, मगर जब देह एक हो गई तो शायद दिल भी एक हो जाए।'

'यह अच्छा तमाशा खड़ा हो गया !'

'बिल्कुल बेतुका। इसे उसे बुरा लेना ही नहीं चाहिए था, मगर वह अपने स्वभाव की बाँदी ठहरी। फिर रात-दिन आपके खिलाफ़ वह राज के कान भरती रहती है। वह भी आपसे दूर हो गया। पत्नी पहले है—मित्र पीछे।'

'यह तो बहुत बुरा हुआ।'

'छोड़िए, इन बातों में माथा-पच्ची करने से अब कोई फ़ायदा नहीं। समय सभी घाव को भर देता है। आपके लिए भी दूसरा कोई चारा न था।'

अजीत कुछ देर के लिए बड़ा गम्भीर हो गया। जाने कितने विचार मन में आए और चले गए। जीवन में कुछ भी असम्भव नहीं। जब राज ऐसा मित्र दूर हो सकता है तो कोई क्या करे—क्या कहे ?

'क्या सोच रहे हैं आप? बड़े चिन्तित दिखते हैं।'
—माला ने फिर छेड़ा।

'कुछ नहीं......यों ही........बेसिर-पैर की...'

'आखिर सुनूँ भी!'

'यही कि लता के लिए मुझे कोई परवा नहीं, मगर राज मेरे बचपन का मित्र रहा। अभिन्न सहचर भी। उसपर मुझे बड़ा भरोसा था। वह जब बदल गया तो अब कोई भी बदल सकता है। मनुष्य पर से मेरा विश्वास उठता जा रहा है। वही राज जो छुट्टियों बाद मेरे आने पर गले से लिपट जाता और दो-चार दिन अपने घर रखे बग़ैर मुझे होस्टल न जाने देता, उसी की ऐसी हरकत! मैं तो सन्न हूँ। आदमी इतना बदल सकता है! हे भगवान्!! उफ़!!!'

'आप बहुत बेचैन दिख रहे हैं। आखिर इतनी बेचैनी क्यों? संसार परिवर्तनशील है। नित बदलना, नित बनना, नित बिगड़ना—यह सब नित्य का खेल है।'

'बात सही है माला! मगर तुमको वे पंक्तियाँ याद हैं—तुम्ही ने तो एक बार गाया था—'

'कौन-सी?'

'वही—मुझको इसका डर नहीं कि बदल गया ज़माना,
मेरी ज़िन्दगी है तुमसे, कहीं तुम बदल न जाना।'

माला ज़ोर से हँस पड़ी। हँसती रही—पेट के बल हँसती रही। कमरे की दीवार, दीवार में टँगे चित्र, यानी सब कुछ हँसते रहे—हँसते रहे। और, अजीत चुप—गुमसुम—सोचता हुआ—'इतनी हँसी की तो कोई बात नहीं, फिर...!'

✣

'आज बहुत दिनों पर माँ याद आई लता ! क्या ससुराल जाते ही माँ को भूल गई ? सास के लिए इतना प्रेम जग गया ? लोग ठीक ही कहते हैं—बेटी पराई होती है ।'—लता के आते ही माताजी ने ताना मारा ।

'ना माँ, ना ! इधर लोगों के आने का ऐसा सिलसिला लगा रहा कि कहीं बाहर जाने को समय ही नहीं मिला । आज ही बड़ी मुश्किल से समय निकाल कर भाग आई यहाँ ।······फिर इनके क्लब में जाना—इनके मित्रों से मिलना—यह भी एक तमाशा खड़ा रहता है ।'—लता ने अपनी व्यस्तता प्रकट की । फिर राज की ओर मुड़कर बोली—देखिए, कहती न थी कि माँ अकेली है, नाराज़ हो रही होगी—एक मिनट के लिए भी ले चलिए । मगर, आपको खुशगप्पियाँ लड़ाने से फुर्सत कहाँ !'

'माताजी ! लता की नहीं, मेरी ही ग़लती है । हाँ,

इधर हम बहुत व्यस्त रहे। मगर अब भीड़ खत्म हो गई। अब आने-जाने का सिलसिला ठीक से चल सकेगा। हाँ, माला कहाँ है? कहीं दिखती नहीं?'

'घर में बैठकर 'होम टास्क' कर रही है। कालिज की पढ़ाई—किताबों का अम्बार लग गया है।'

'अरे, उसका नाम लिखा गया?'

दोनों आश्चर्यचकित हो एकबारगी कह उठे—

'हाँ।'

'मगर तुम कहती थी कि अब इसकी पढ़ाई का भार मुझसे न उठेगा। फिर........?

'हाँ, क्या करती, उस दिन अजीत आया और उसका नाम लिखा गया। अच्छा ही हुआ, अकेले घर बैठने से।'

अजीत का नाम सुनते ही लता जल-भुन उठी। उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। खीस में वुत। चट माला के पास पहुँची और एकबारगी उबल पड़ी—'क्यों माला, मुझे सिर्फ चिढ़ाने के लिए अजीत से हिली-मिली रहती हो? क्या बनारस में मैं न थी कि अजीत को बुलाकर अपना नाम लिखवा लिया? क्या मैं मर गई थी? क्या तुम्हारे जीजाजी यह नगरी छोड़ कहीं दूर जा बसे थे कि तुमने अजीत से सहायता की भीख माँगी? इतनी गिर गई हो तुम? तुम्हारे

जीजाजी के एक इशारे पर पूरी युनिवर्सिटी में तहलका मच जाता है। फिर इनको न बुलाकर अजीत से मदद ली? मुझे बड़ा दुःख हुआ यह सब सुनकर। छीः—छीः!'

राज कुर्सी पर चुप बैठा है और लता बरसती चली जा रही है। माला को काटो तो खून नहीं। दीदी के मुँह से ऐसी खरी-खोटी सुनने को वह तैयार न थी। आखिर दीदी को आज क्या हो गया है! पागल तो न हो गई वह! माताजी भी चौके में बैठी इन बातों को सुन रही हैं और अवाक् हैं।

'दीदी, तुम इतना तूल क्यों कर रही हो? अजीत बाबू तो अनायास ही मिलने आए। घर पर कोई था नहीं, हमलोगों ने उन्हें ऑफिस में नाम लिखाने को भेज दिया। बस, इतनी छोटी-सी बात को तुमने इतना बड़ा बना दिया—तिल को ताड़ कर रही हो—।'

'तुम बुद्धू हो माला! अनाड़ी, नासमझ। फिर मेरी भावनाओं से तुम परिचित हो। भगवान के लिए तुम उसे शह मत दो।'

माला चुप है।

'मैं अजीत को खूब पहचानती हूँ। वह जितना ही कम यहाँ आए उतना ही अच्छा। मैंने तो उसे कभी नहीं सराहा। तुम्हीं ने उसे आसमान पर चढ़ा दिया।'

माला गुमसुम।

'माला! वह मेरा बचपन का साथी है। जितना मैं उसको जानता हूँ उतना कोई और नहीं जानता। उसकी जितनी ही कम यहाँ रसाई हो, उतना ही अच्छा। ऐसे आदमी को घर में न आने दिया करो। मैं तो उसे अब ज़रा भी 'लिफ्ट' नहीं देता। उस दिन वह मेरे यहाँ भी आया था, मगर मैंने उससे भरमुँह बात तक न की। कुछ देर बैठा रहा, फिर मेरा रुख देखकर चलता बना। मैंने उसे लता से भी मिलने न दिया। उसे 'लिफ्ट' देने से फ़ायदा?'—राज भी कैंची चलाता रहा—चलाता रहा। जिधर से चाहता, कतर देता—बेपरवाह—बेलौस।

इधर माला सोच रही है—कितना बदल गया इन्सान! यही राज बाबू हैं, जिनकी रसाई हमारे घर में अजीत बाबू के ही चलते हुई—रात-दिन उन्हीं की तारीफ़ करते नहीं अघाते थे—वही आज उन्हें नीचा दिखाने को कुछ भी उठा नहीं रखते। और, यही दीदी, जो उनसे शादी तक करने को लालायित थीं, आज उनसे दुश्मनी ठाने बैठी हैं। यह कहाँ का न्याय है—यह कैसी संस्कृति! मनुष्य इतना भी गिर सकता है! जो घर का एक अभिन्न अंग बन गया था, वही आज आगन्तुक बन गया है! आह! हे भगवान!

भागते किनारे

माँ अपने नए दामाद के लिए नाश्ता-चाय बना लाईं। माला ने राज बाबू को चट चाय बनाकर थमाया; फिर दीदी को भी दिया। अब लता ने दूसरी बौछार बगल में बैठी माँ पर की—'माँ! तुम तो मेरे विचारों से अवगत हो। तुम्हें अजीत को मेरी खातिर भी तो सर पर नहीं चढ़ाना चाहता रहा!'

'बेटी! तुम्हें ग़लतफ़हमी हो गई है। हमदोनों ने कोई ऐसी बात न की जिससे तुम्हें चोट पहुँचे। वह तो सिर्फ़ 'ऐडमिशन' के समय आया और हमें बिना माँगे सहायता देने लगा। हमने उससे कभी कुछ न माँगा और न कभी कुछ चाहा।'

'माताजी! अब से अजीत जब आए तो उसे दूर से ही प्रणाम कर विदा कर दिया करें। हमलोगों से दूर रहने को मैं भी उससे साफ़-साफ़ कह दूँगा। आज न तो कल उससे भेंट होगी ही।'—राज ने कहा।

'जैसी तुम्हारी मर्जी बेटा!'—माताजी ने उसे शान्त करने की ग़रज़ से कहा और बातों का सिलसिला बदलने का प्रयास करती हुई बोलीं—'कहो बेटा! हमारी समधिन तो प्रसन्न हैं न! हम ग़रीब लोग उनकी कुछ सेवा न कर सके—आखिर हमारी हस्ती ही कितनी—मगर हमारी लता तो उनकी कोई भी सेवा करने से हिचकेगी नहीं।'

'माताजी, आपने भी खूब कहा ! लता ऐसी सुघर पतोहू पाकर कौन सास खुश न होगी ! माँ बहुत प्रसन्न हैं—गद्गद् । उनको कोई शिकायत नहीं । अपनी तलहथी पर अपनी पतोहू को रात-दिन लिए रहती हैं ।'

इतने 'हेवी-डोज' से तो कहीं जाकर लता का मूड कुछ बदला वर्ना पानी में आग लगाने और लौ पर लौ उगलने से वह बाज न आती ।

'माँ, माताजी बहुत खुश रहा करती हैं । आखिर खानदान और संस्कृति भी तो कोई चीज है । उनकी नजरों में अमीरी-गरीबी किसी रिश्ते के बाँटने की लकीर नहीं बन सकती । जैसी वह धन की धनी हैं, वैसी ही हृदय की भी बड़ी हैं ।'—लता ने उनकी तारीफ़ की झड़ी लगा दी ।

माँ मन-ही-मन प्रसन्न है क्योंकि बेटी सुखी है—प्रसन्न है । उसने लता के भाग्य को सराहा—भगवान का धन्य मनाया । भगवान सबको ऐसी ही किस्मत दे—माला को भी को भी ऐसा ही वर दे ।

रात का भी खाना-पीना समाप्त कर जब लता और राज अपने घर चले गए तब माला शान्त और संयत हो अपने पलंग पर बत्ती बुझाकर लेट गई । खिड़की से आता फिर-फिर समीर

उसके अंग-अंग को सहलाता रहा और पूर्णिमा की झाँकती हुई चाँदनी ने उसे अपनी गोद में समेट लिया।

माला अर्द्धचेतन अवस्था में पड़ी है और इस निशीथ में उसका अकेला साथी—वही उसका चिरपरिचित मन—कहे जा रहा है अपनी कहानी—बेरोक, बेलौस……! —आखिर उसकी ज़िन्दगी ने भी कैसी करवट ली—कैसे धारा पलट गई! जिस घनी छाँव तले वह एक क्षण विश्राम करती—शीतलता अनुभव करती, वह भी छिनी जा रही है—मिटी जा रही है। उसका वह नीड़—सालों-साल पत्तियों-टहनियों को चोंच से ला-लाकर सजाया-सँवारा हुआ वह घोंसला—आँधी के एक झोंके में उड़ा जा रहा है—विलीन होता जा रहा है इस विशाल अम्बर में—अनन्त शून्य में, और वह भींगती-कलपती एक ठूँठ पर बैठी इस महानाश की विभीषिका को—इस अकाल-मृत्यु के नर्त्तन को एकटक देखे जा रही है—अनासक्त, असम्बद्ध—शरीर से अभी-अभी बिछुड़ी हुई आत्मा की तरह—हाँ-हाँ, उसी की तरह।

'प्रिय अजीत बाबू,

कल रात एक बड़ी भयानक कल्पना में डूबी पलंग पर पड़ी-पड़ी करवटें बदलती रही। उफ़! कैसी दर्दनाक थी वह रात—कितनी विचित्र थी वह कल्पना जो मानव-मन की पकड़ के परे रही—सूक्ष्म, अदृश्य!... शरीर से अभी-अभी बिछुड़ी हुई जीवात्मा की क्या-क्या गति, क्या-क्या मति होती होगी! जिस शरीर से इतना प्यार, इतना मोह रहा, वही अब मृतावस्था में बेलौस, बेखबर ज़मीन पर पड़ा है—और वह जीवात्मा फिर जीवित होने की अभिलाषा में बार-बार उसमें घुसती, बार-बार उसे जगाने की कोशिश करती है, मगर वह तो निर्जीव पड़ा है—निष्प्राण! फिर लोग उसे उठाकर ले जाते और जलाकर खाक कर डालते हैं और वह जीवात्मा रोती-बिलखती यह दृश्य देखती रह जाती है—उसके जीवन के संगी-साथी भी उसके शोक को बाँट नहीं पाते, क्योंकि

भागते किनारे

वह आज अकेली है—बेसहारा, मौन, एकाकी। एक अपरिचित देश का वासी—एक नए संसार का अजनबी। मैं घबड़ा उठती। तड़प-तड़प कर उठ बैठती। कभी बत्ती जला देती—आँखें फाड़-फाड़ कर दीवारों पर टँगे चित्रों को देखती, अपने अस्तित्व की ओर एक नज़र दौड़ाती, फिर लेट जाती। कैसी बुरी थी वह रात! कितनी विकट—कितनी भयानक!……

खैर, छोड़िए इस कल्पना को। आपके रेशमी जीवन में ऐसी मनहूस कल्पना को स्थान ही कहाँ! उमंगों और उम्मीदों में बसी अपनी रात को आप मेरी इस बेतुकी बात से तबाह न करें।

उस दिन दीदी आई थीं। राज बाबू भी। वे लोग मुझे खूब जली-कटी सुना गए। आपके लिए ताने तो मुझे ही सुनने पड़ते हैं—जैसे मैं ही आपकी सब-कुछ हूँ। वे आपके नाम से जल-भुन उठते हैं। उनकी ज़रा भी राय नहीं कि आप हमारे घर की पौर पर भी क़दम रखें। आपकी चाल में उन्हें एक साजिश—एक छलछन्द की बू मिलती है। कैसी थोथी बात—कैसी विडम्बना! परन्तु क्या कीजिएगा—'जाकी रही भावना जैसी, हरि मूरति देखी तिन तैसी'—। मगर मुझे तो ऐसा लगा, मेरी दुनिया—मेरा सारा संसार ही लुटा जा रहा है और मैं दूर खड़ी-खड़ी अपनी मौत का नज़ारा देखे जा रही हूँ—बस,

देखे जा रही हूँ। उस पंछी की क्या बिसात जिसका नीड़ ही उजड़ रहा हो—उस नारी का क्या अस्तित्व जिसकी छाँव ही मिट रही हो !

हाँ, इधर किरण बहन का कोई हाल न मिला। वह कैसी हैं ? कहाँ हैं ? आपके साथ नौकरी पर या घर पर ? कृपया जल्द सूचित करेंगे। उनका भी इधर कोई पत्र नहीं आया। जी लगा है।

मेरी पढ़ाई शायद छूट जाय। मुझे 'श्रीशिप' नहीं मिली। पैरवी की इस दुनिया में नित नए-नए पैरवीकार कहाँ से ढूँढ़ लाऊँ। आप अपने प्रोफेसर से आकर मिलेंगे नहीं ? एक बार कोशिश करने में कोई हर्ज तो न होगा। दीदी और जीजाजी मुझसे कटे-कटे-से रहते हैं। उनका गुस्सा अभी शान्त नहीं हुआ है।

आपकी—

माला'

अजीत किरण को लेने घर आया है। यह चिट्ठी घूमते-घामते उसे घर पर ही मिली। किरण से मिलने पास-पड़ोस की औरतें आई हैं। पहले-पहल घर की नई बहू अपने पति के साथ नौकरी पर जा रही है इसलिए सभी उससे मिलने—उसे विदा करने को आती हैं। किरण को साज-शृंगार कर

उनके बीच बैठना पड़ता है—हर एक से दो-चार बातें करनी पड़ती हैं। कभी हँसना—कभी कुछ 'सीरियस' भी हो जाना पड़ता है। मुख की मुद्राएँ न बदली जाएँ तो लोकाचार कैसे निभे!······

मध्यरात्रि के उपरान्त वह अपने शयनकक्ष में आती है। पसीने से तर। साड़ी का आँचल छाती से उतारकर पलंग पर फैला देती है और जूड़े का जूही का हार कुर्सी पर फेंक कर लेट जाती है—उफ़! चार दिनों से विदा देनेवालों का जो ताँता बँधा है वह आजतक खतम न हुआ। जी ऊब गया है। इस उमस में टीशू की भारी साड़ी पहनकर बैठना एक कवायद है पूरा। पसीने की बूँदें गहरे पाउडर की परत को भेदकर ऊपर उभर आई हैं। होठों की कृत्रिम ललाई भी सिमट-सी गई है—पसीने के प्रभाव से शायद। 'डबल बेड' के दूसरे तकिए पर सर रखे अजीत माला का पत्र पढ़ रहा है। उसे खोलकर किरण ने सहेजकर अपने तकिए तले रख दिया था।

'यह पत्र कब आया?'

'कल सुबह। पता नहीं आपके ऑफिस से घूमता हुआ यहाँ कैसे पहुँच गया।'

'वहाँ से मेरे रवाना होने के बाद वहाँ पहुँचा होगा।'

'तो अब क्या किया जाए? माला को नौकरी तो न मिली।'

'हाँ, यह बड़ा बुरा हुआ। मुझे तो प्रोफेसर साहब ने आश्वासन दिया था, फिर जाने कैसे……।'

'आजकल किसी की बात का भरोसा नहीं।'

'हाँ।'

'मगर इसका कोई उपाय आपको करना ही पड़ेगा। एक दिन के लिए चले न जाइए—फिर पैरवी कर आइए।'

'अब पैरवी करने से कुछ न होगा। समय बहुत निकल गया। पूरी सूची सुना दी गई होगी।'

'फिर?'

'यही तो सोच रहा हूँ—कोई रास्ता तो निकालना ही होगा। नहीं तो वह मुफ्त में मारी जाएगी।'

'उफ़! बड़ी उमस है—आप खिड़कियों को जकड़कर क्यों सोए हैं?'—वह उठकर खिड़की खोल देती है। फिर—फिर समीर कमरे में फैल जाता है।

कुछ देर में ठंडाकर वह उठ बैठी। अर्धनग्न हो साड़ी बदलकर हल्की सूती साड़ी पहन फिर पलंग पर आ गई और अनीत के पार्श्व में छिपी-छिपी पूछ बैठी—'तो हमारी नई गिरस्ती का पूरा प्रबन्ध हो गया?'

'वह तो गृहिणी के जाने के वाद ही होगा!'

'तो इतने दिनों से क्या कर रहे थे?'

'क्वार्टर लिया, पानी-विजली का इन्तज़ाम किया, पलंग-फर्नीचर का प्रवन्ध किया, एक नौकर रखा, नौकरानी रखी·······।'

'यहाँ से माँ जी ने खाना वनाने तथा खाने का पूरा सामान पैक कर रखवा दिया है। हाँ, चूल्हा कैसा है?'

'पत्थरकोयले का चूल्हा है—वड़ा सुन्दर वना है। धुआँ एकदम नहीं आता। वहाँ फैक्टरी का कोयला हमें मुफ्त मिलता है।'

'चलिए, यह तो अच्छा ही हुआ। लकड़ी के चूल्हे पर वड़ी आफ़त होती। उस चूल्हे पर तो मैं चट खाना तैयार कर दूँगी—आपके ऑफिस जाते-जाते, आपके ऑफिस से आते-आते।'

'वाह! यहाँ तो वड़ी तेज़ी दिखा रही हो तुम, मगर वहाँ काम सर पर पड़ेगा तो छक्के छूट जाएँगे। अभी तो माँ के हाथों वने-वनाए पकवान नित नए-नए चाभने को मिलते हैं—वहाँ तो वस, अपने घोलो, अपने खाओ।'

'हाथ कंगन को आरसी क्या? परसों से मेरे हाथों का

करिश्मा आप देख लेंगे। नित नए-नए पकवान आपको भी खिलाऊँगी।'

अजीत जोर से हँस पड़ा। वह भी हँस पड़ी।

अजीत सो रहा है। थका-माँदा था, पलक मारते नींद आ गई। किरण प्रफुल्लित है—मगन है अपनी नई गिरस्ती की कल्पना में। अपना एक घर होगा—अपना एक 'किचन'—जिसे घेरकर उसकी सारी गिरस्ती खड़ी हो जाएगी। स्टोर में अच्छे अँचार, पापड़, तिलौरी, अदौरी और रोजमर्रे के चावल अलग—कभी-कभी दावतों के दिन पोलाव बनाने को पीलीभीत के लम्बे-लम्बे पतले-पतले चावल अलग। गोल मूँग तथा बनारसी चने के दाल। ......और रंगीन पैकेट में पीसे हुए मसाले। पेंटरी में चमचमाते बर्त्तन एक क़रीने से सजे रहेंगे और छः आदमी के खाने के लिए डिनर-सेट तथा चाय की प्यालियाँ भी सजी रहेंगी। 'बेड-रूम' तो सजा-सजाया गुड़िया का घर होगा। सभी वस्तुएँ लाल—टेस लाल। लाल कालीन, लाल-लाल पलंग, उसपर लाल-लाल पलंगपोश। पर्दे भी लाल और कमरे का 'डिसटेम्पर' भी कुछ लाली लिए हुए ही! जित देखो तित लाल!—किरण अपनी नई गिरस्ती की कल्पना से नाच उठी, इठला पड़ी। उसके सपनों की

आज माला लता की सास निमन्त्रण पर उसके यहाँ प्रीतिभोज में शरीक होने आई है। शहर भर की संभ्रान्त महिलाएँ प्रीतिभोज में निमन्त्रित हैं। काफी चहल-पहल है। अमीरों की दुनिया, पैसे की कोई कमी नहीं। साज-श्रृंगार की एक शानदार नुमाइश। हर एक की अपनी अलग विशेषता रही। परन्तु माला तो अपनी सुफेद सादी साड़ी में ही आई है। उसे देखकर लता की सास ने टोका भी—'ऐसी सादी साड़ी क्यों? लता ने भी ख्याल नहीं किया। उसके पास बीसियों एक-से-एक साड़ियाँ हैं। उन्हीं में से एक तुम्हें भी पहना देती—।'

'माताजी! पार्टी की भीड़ में इस ओर मेरा ख्याल ही न गया। मेरी शादी में ही इसे अच्छी-अच्छी कितनी साड़ियाँ मिली थीं, मगर यह तो 'जोगन' बनी रहती है—मैं क्या करूँ?'

'ना बेटी, ना। अब शादी की उम्र हुई तेरी। आज नहीं तो कल तू किसी का घर बसाएगी। पहिराव—साज-शृङ्गार पर पूरा ध्यान दिया कर। नहीं तो सब फूहड़ कहेंगे।'

माला ने लता की सास की बात को हँसकर टाल दिया। ये बातें उसे बुरी तो जरूर लगीं, मगर इस हंगामे में बात बढ़ाना उसने अच्छा न समझा।

जब पूरी मजलिस हवेली में जम गई तो लता ने माला के कान में कहा—'कुछ बजाकर सुना दो। मैंने तुम्हारा सितार भी मँगा लिया है। खाने में अभी देर है। सभी बाग़-बाग़ हो जाएँगी। तुम्हारी उँगलियों के जादू से अभी ये सब अपरिचित हैं।'

'इतनी बड़ी भीड़ में मुझे बजाने का अभ्यास नहीं—मैं तो स्वान्तः सुखाय बजा लेती हूँ······।' वह लजा रही है।

'लजाती क्यों हो? जो भी बजाओगी, इन्हें अच्छा ही लगेगा। ये सिर्फ गहना-कपड़ा पहनना जानती हैं। सितार के गत से इनका क्या सम्बन्ध! पहले गत······फिर एकाध भजन भी······।'

'ऐलो! फिर तुम बात बढ़ाने लगी। ना-ना, एक गत बजा दूँगी—बस।'

'पागल न बनो। बड़ी बहन के ससुराल में उसकी लाज

रख लो। तुम्हारे जैसा गला यहाँ किसी ने नहीं पाया है। गाकर देखो तो सही—समाँ बँध जाएगा।'

दीदी ने बात ही ऐसी कह दी कि माला अब एतराज न कर सकी।......फिर तो उसने सारी मजलिस को सचमुच बाग़-बाग़ कर दिया। अपने गायन और वादन से ऐसा सुर-संसार खड़ा कर दिया कि सभी महिलाएँ अपनी भूख भूल घण्टों झूमती रहीं—उसे सराहती रहीं। माताजी भी उसकी प्रशंसा करती नहीं थकतीं। आज के प्रीतिभोज में उसने अपने संगीत से जान डाल दी। मध्यरात्रि के उपरान्त जब माला जाने को तैयार हुई तो लता ने कहा—'मैंने माँ के यहाँ सोने को एक महरी भेज दी है। अब बहुत देर हो गई। आज रात यहीं सो लो। कल सुबह दोनों साथ ही माँ के यहाँ चलेंगे।'

माला मन मसोस कर रात में वहीं सो गई। उसका पलंग लता की सास की बगल में ही पड़ा। उसने माला को कई बार छेड़ा—'अब अगले साल तुम्हारा भी विवाह हो जाना चाहिए। मैं वर ढूँढ़ रही हूँ। समधिन को सब खबर कर दूँगी।' मगर माला बार-बार 'ना' कहती—'अभी मुझे बहुत पढ़ना है। अभी जल्दी क्या है? पीछे देखा जाएगा।'

'माला बिटिया ! उम्र ज्यादा हो जाने पर फिर सुन्दर वर न मिलेगा।'

'तो और अच्छा ! फिर शादी न होगी।'

'धत् ! कैसी पगली-जैसी बातें करती हो ? अभी लड़कपन नहीं गया तुम्हारा।'

सुबह नहा-धोकर दोनों बहनें अपनी माँ के यहाँ पहुचीं। उन्हें देखते ही माँ ने कहा—'कहो, कल रात तो खूब गाना-बजाना रहा। महरी मुझे सब बता रही थी।'

'हाँ माँ, माला ने तो कमाल कर दिया। ऐसा समाँ खड़ा कर दिया कि सभी चकित रह गए। कितनी माला को अपने घर की बहू बनाने को तरसने लगीं। मेरी सास तो पीछे पड़ गईं। इसके लिए वर ढूँढ़ने को लालायित हो गई हैं।'

अपनी बेटी की प्रशंसा सुनकर माँजी बहुत प्रसन्न हैं। बहुत देर तक कल रात की पार्टी का हाल उनसे सुनती रहीं। फिर माला घर की झाड़-बुहार में लग गई और देर तक जागने के कारण लता माला के पलंग पर थकी लेट गई और मैगजीन के पन्ने उलटने-पुलटने लगी। माँजी को तो चौके या स्कूल से फुर्सत ही कहाँ कि कोई दूसरा काम करें !

कुछ देर बाद खीस में बुत लता चौके में चली आई और एकबारगी बरसने लगी—'माँ, माला ने हमें बर्बाद कर दिया।'

मुझे विश्वास न था कि यह इतनी गिर गई है। घर की इज्जत मिट्टी में मिला दी इसने। इसके सर पर कौन भूत सवार है—मैं नहीं समझ पाती। आखिर इसे हो क्या गया है? जरा भी ऊँच-नीच नहीं समझती। हमारी बात तो एकदम नहीं मानती। इतनी जिद्दी—इतनी बुद्धू मैं इसे नहीं समझती थी। यह बाहर से कुछ है, अन्दर से कुछ। न कुछ साफ़-साफ़ कहती है और न कुछ साफ़-साफ़ करती है। एकदम बेहया हो गई है।'—क्रोध से लता के होंठ काँप रहे हैं। आँखों से अंगारे बरस रहे हैं। चौके में आवाज़ सुनकर माला भी कोने में आकर खड़ी हो गई है—शान्त, निश्चल।

'अरे, बात क्या है—कुछ मैं भी तो सुनूँ! अभी तो दोनों बहनों में घुल-मिलकर बातें हो रही थीं, यह क्षणभर में क्या से क्या हो गया?'

'हुआ क्या? सब कुछ हो गया। देख, अपनी दुलारी बेटी की काली करतूत! अजीत के यहाँ से फीस के पैसे मनीआर्डर से मँगाए जाते हैं। यह साजिश, और मुझे कुछ पता नहीं? देख, अजीत के मनीआर्डर की अधकट्टी। सभी बातें साफ़-साफ़ लिखी हैं। इसी की किताब में पड़ी थी। पता नहीं, कितने मनीआर्डर आ गए। आवारा, शोहदा! हमारा घर बर्बाद कर रहा है।'—लता तमक कर वहीं मोढ़े पर बैठ गई।

माला चुप है, मूर्त्ति की तरह अटल।

माँ बिलखने लगी—'यह क्या किया माला! मेरे मुँह में कालिख पोत दी। मैं ग़रीब हूँ, इसीलिए दूसरे के सामने हाथ पसार दिया? यह ज़िल्लत—इतनी शोख़ी! और वह तुमसे इस पैसे की क़ीमत माँगेगा बेटी, क़ीमत! कोई भी पुरुष नवयौवना पर तरस खाकर पैसे नहीं फेंकता। इस दान के अन्दर उसका दानव बोलता रहता है। अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ—किधर जाऊँ? मेरी आँखों से दूर हट कलमुँही! तूने मुझे कहीं का न रखा। छीः-छीः, बेशर्म!'

माँ छाती पीटने लगी।

लता बरसती रही—'अजीत मुझे कभी न भाया। तुम दोनों ने ही उसे इस हद तक चढ़ा दिया। अब वह हमारा घर बर्बाद कर रहा है। उसे घर में आने न दो माँ! आवारा, लम्पट! माला से उसका कोई भी सम्बन्ध न रहे।'

अब माला भी फट पड़ी। उसकी बर्दाश्त का बाँध टूट गया—'माँ, अजीत बाबू एक दिन हमारे परिवार के सबसे बड़े हितकारी मित्र थे—यहाँ तक कि तुम उन्हें अपना दामाद बनाने की भी लालसा पालने लगी, दीदी उन्हें अपना पति बनाने के सपने देखने लगी, मगर जब वह सपना साकार न हुआ तो वह हमारे दुश्मन, आवारा, लम्पट, लुच्चा, लफंगा सब कुछ

बन गए! यह कहाँ की नीति है, कैसा न्याय है—कौन-सा व्यवहार है?······वह हमारे घर में अपने परिवार के जैसे थे। तुम्हें आवश्यकता पड़ती तो तुम उनसे पैसे माँग लेती और उन्हें जब आवश्यकता होती तो तुमसे माँग लेते—इतनी आत्मीयता, ऐसी अभिन्नता कि हम सब एक हो गए। अब उसी अभिन्नता—उसी आत्मीयता की कड़ी को यदि मैं जुगाए-निभाए चली जा रही हूँ—एक संयत, एक पवित्र तरीक़े से—तो मैं कलंकिनी, कलमुँही, बदचलन—जाने क्या-क्या न हो गई! हाय री मतलबी दुनिया और हाय री मतलब की यारी! फिर वाह री ईश्वरी लीला और वाह री क़ुदरती माया! ···मेरा तो माथा घूम गया—आदमी ऐसा स्वार्थी होता है, इतना बदल जाता है?'

माँ बिलखकर शान्त हो गई है।

लता भी घायल हो छटपटा रही है। कोई उत्तर न सूझा तो दूसरा रास्ता पकड़ लिया—'माँ, इन दलीलों पर समय न बर्बाद करो। इसी जाड़े में माला की शादी कर दो। वह अपने घर चली जाय, वही अच्छा। पैसे की तुम चिन्ता न करो। एक-से-एक अच्छे वर मिलेंगे, बिना दहेज के। इसका भार अब तुमसे न चलेगा—बड़ा महँगा पड़ेगा।'

'दीदी! विवाह तो मैं करूँगी नहीं—चाहे कुछ भी हो

जाय। अभी तो मुझे पढ़ना है—बाद की बात बाद में देखी जाएगी।'—माला की आवाज़ में एक अजीब दृढ़ता है।

'देखा माँ, बात कहाँ तक बढ़ गई है! इसे चिल्लाने दो। हमें जल्द ही कुछ रस्म करा देना होगा। मैं अपनी सास से आज ही बातें चलाती हूँ। उनके कई एक अच्छे-खासे रिश्तेदार हैं।'

माला झमक कर चली गई तो माँ ने कहा—'हाँ-हाँ, इसकी शादी जल्द ही कर दी जाय। शुभस्य शीघ्रम्। नहीं तो……।'

✣

ऑफिस से लौटने के बाद अजीत को राज का एक तार मिला—'जल्द मुझसे मिलने आओ। एक आवश्यक काम आ पड़ा है।'

अजीत ने तार किरण को दिखाया। माथापच्ची की—आखिर कौन-सा जरूरी काम आ पड़ा है कि तार देकर बुलाया जा रहा है? किसी निष्कर्ष पर दोनों पहुँच नहीं पा रहे थे। अन्त में अजीत ने भोर की गाड़ी से काशी जाना तय कर लिया। राज से मिलने के उपरान्त ही सब कुछ ठीक-ठीक पता लग पाएगा।

रास्ते में अजीत सोचता रहा—राज से मेरा अब वह पुराना स्नेह-सम्बन्ध न रहा। उसके मन में मेरे प्रति कटुता लता ने जगा दी है। इस परिस्थिति में यदि वह कुछ उल्टा-सीधा बकने लगा तो बड़ा बुरा होगा। कटुता और बढ़ेगी ही।...तो क्यों न वह लौट जाय—पत्र द्वारा सारी बातें पूछ

ले……परन्तु अब इतनी दूर आकर लौटना क्या अच्छा होगा? छोड़ो—जो होगा सो होगा—इसी उधेड़-बुन में पड़ा अजीत राज के घर पहुँचा।

बाहर उसका पुराना नौकर शिवटहल तम्बाकू बना रहा है। अजीत को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ और बोला—'बहुत दिनों के बाद आए भइया! क्या पढ़ना छोड़ दिया?'

'हाँ भई, अब नौकरी कर रहा हूँ। सारी दुनिया ही बदल गई। कहो, राज भैया हैं?'

'हाँ-हाँ, बैठिए। मैं उन्हें अभी खबर किए देता हूँ।'—कहता वह अन्दर चला गया।

कुछ क्षणों बाद राज खुद बाहर आया और अजीत से बड़े तपाक से हाथ मिलाते हुए कुशल-क्षेम पूछा।

'हाँ, सभी अच्छे हैं—प्रसन्न हैं। कहो, तुम्हारी कैसी कट रही है?'

'खूब मजे की। गुलछर्रे ही गुलछर्रे हैं। चलो, अन्दर ड्राइंग-रूम में बैठें। वहीं बातें होंगी।'

अजीत ने पाया, राज का रुख कुछ बदला-बदला-सा है। अन्दर जो आग सुलग रही हो, परन्तु ऊपर से शान्त ही नजर आता है।

दोनों ड्राइंग-रूम में बैठे इधर-उधर के गप्प लड़ाते रहे।

कॉलेज के पुराने दिनों की चर्चा छिड़ी है। वातावरण सुन्दर ही है। कोई कटुता नहीं, कोई वैमनस्य नहीं। फिर चाय और नाश्ते की तश्तरियाँ आईं और उनके साथ-ही-साथ बनी-ठनी लता भी आई। एक ही क्षण में अजीत भाँप गया—लता अब वह पुरानी लता नहीं। एक तो पहले की ही तीती—दूसरे अब नीमचढ़ी। उसने नमस्ते करते हुए पूछा—'कहिए, भाभी कैसी हैं?'

'अच्छी ही हैं।'

'आपने एक बार भी उन्हें मिलाया नहीं।'

उसी लहजे में अजीत ने चट कहा—'आपने एक बार भी उन्हें बुलाया नहीं।'

'ओ! सारा दोष हमारे ही सर रहा? लीजिए, मैं स्वीकार कर लेती हूँ।' तीनों हँस पड़े।

जी बहलाने को लता कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करती रही, फिर नाश्ता समाप्त होते ही उसने बात की धारा बदल दी—'अजीत बाबू! यह दुनिया सदा तफ़रीह की वस्तु नहीं—यह तो आप भी मानते होंगे। और, यदि शादी-शुदा आदमी किसी अनब्याही भोली लड़की से तफ़रीह करे तो यह कितना बड़ा पाप होगा—इसे आप भी समझते होंगे।'

'मैं आपका मतलब नहीं समझ सका।'

'आप सब समझ रहे हैं अजीत बाबू! मुझे भुलावे में न रखें। मैं माला नहीं हूँ।'—लता ने तुरन्त तेवर बदल दिया।

अजीत ने भी अपने अन्दर की सारी शक्ति समेट कर जवाब दिया—'लताजी! मैं सचमुच आपका अभिप्राय नहीं समझ रहा हूँ। तोड़-मरोड़ कर जिस ढंग से आप बातें कर रही हैं उसे कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति बर्दाश्त नहीं कर सकता। आप बेसिर-पैर की बेतुकी बातें कर रही हैं। आपकी धारणाओं का सचाई से कोई सम्बन्ध नहीं है।'

लता भी खार खा गई—'आप मुझे जवाब से दबाने की कोशिश न करें अजीत बाबू! अपनी कमजोरियों को बातों के आडम्बर में छिपाने का प्रयास निष्फल होगा। आपने माला से जो सम्बन्ध बना रखा है या जो बनाने की नीयत और कोशिश रखते हैं, वह सम्मानजनक नहीं है। माला एक गरीब माँ की बिना बाप की भोली बेटी है। उसे तीन-पाँच कुछ भी मालूम नहीं। कृपा कर उसे बर्बाद न करें। भगवान् के लिए उसे बख्श दें।'—आखिरी वाक्य कहते-कहते उसकी आवाज़ में जाने कैसे एक नम्रता, एक कोमलता आ गई।

अजीत शान्त है, निश्चल। उसने कोई सरगर्मी न दिखाई और न सफाई देने की ही कोई नई चेष्टा की। लता उसे तनिक

भी विचलित न कर सकी। वह मुस्कराते हुए कहता गया—'लताजी! गलतफ़हमियों के लिए मैं क्या करूँ? मैं तो बस यही कह सकता हूँ कि आपके परिवार से, माला से, आप सभी से जो आत्मीयता, जो मित्रता, जो प्रेम मुझे दान-स्वरूप मिला है, उसी का एक तुच्छ प्रतिदान में एक ढंग से देने की चेष्टा किया करता हूँ—और कुछ नहीं। हाँ, इसमें यदि कोई कटुता, कोई अभद्रता आ गई तो···तो यह कमी मेरी ही होगी—कुछ आप सज्जनों की नहीं, मेरी बदक़िस्मती समझिए····।'

अजीत की इस दर्दभरी बात पर वातावरण में एक गम्भीरता छा गई। लता कुछ सकपका गई। राज भी अजीत का रुख देखकर चुप हो गया। सभी कुछ देर चुप रहे। किसी को कुछ नहीं सूझ रहा था कि अब क्या कहें—कैसे कहें!

···आखिर राज ने कहा—'भाई अजीत! लता को तो तुम जानते ही हो—आग नहीं तो पानी। आज से नहीं, कॉलेज के दिनों से ही तुम जानते हो। इसकी बातों का बुरा न लेना। बात यह है कि हम चाहते हैं कि माला की शादी अब कर दी जाय। जवान बेटी अकेले घर में रखना ठीक नहीं। माताजी भी बूढ़ी हुईं। उनका भी अब कौन ठिकाना! उनकी ज़िन्दगी में ही उसकी भी शादी हो जाय—अपने घर

चली जाय खुशी-खुशी—यही सभी चाहते हैं। और, शायद तुम भी यही चाहते होगे...।' आखिरी वाक्य कहकर राज और लता दोनों बड़े गौर से उसे देखने लगे।

'जरूर। इससे सुन्दर प्रबन्ध और क्या हो सकता है! माला की शादी हो जाय, वह खुश रहे, सुखी रहे—यही तो उसके सभी शुभचिन्तकों का प्रयास चाहिए।'—अजीत ने उसी लहजे में कहा।

राज और लता बड़ी देर तक उसे आश्चर्यचकित हो देखते रह गए।

'भई, तुमको तार देकर इसलिए अभी बुलाया कि माला के सर पर एक अजीब खब्ती सवार है। वह शादी के नाम से ही बिगड़ जाती है। क्या तुम उसे समझा-बुझाकर राजी कर सकते हो? जोर-जबर्दस्ती करना उचित नहीं। कृपया हमारी सहायता करो। तुम भी माला को उतना ही जानते हो जितना हम जानते हैं।'—राज ने बड़ी आजिजी से कहा।

'हाँ, मैं उससे अवश्य मिलूँगा और उसे राजी करने की पूरी कोशिश करूँगा। विवाह उसे अवश्य करना चाहिए। यदि वह पढ़ने को बहुत इच्छुक है तो शादी के बाद भी पढ़ाई-लिखाई चल सकती है।'

'हाँ, भला इसमें किसी को क्या एतराज होगा !'

अजीत इतनी शान्ति और सहूलियत से बात करेगा—इसकी उम्मीद राज और लता को न थी। लता कुछ शर्माई भी कि वह नाहक ही अजीत पर एकबारगी यों गरम हो गई। राज को भी लता का यह रवैया अच्छा न लगा। अजीत का रुख जानकर उसे अपना रुख बदलना था। परन्तु अजीत ने बड़ी बुद्धिमानी दिखाई। बात का बतंगड़ होने से बचा लिया।

राज से विदा ले अजीत सीधे माला के घर पहुँचा। माताजी स्कूल गई हैं। माला अकेली किताबों में डूबी अपने कमरे में बन्द है। अजीत को अनायास ही आते देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और आश्चर्य भी। झट आँचल समेटती खड़ी हो गई और बोली—'वाह ! आज दिन में चाँद कैसे उग आया ! क्या धरती की धुरी बदल गई ? कोई खबर नहीं, कोई चर्चा नहीं—यों आज कैसे अनायास आना हुआ आपका ?······हाँ, भोर का सपना, भोर का तारा नहीं जो झट आँखों से ओझल हो जाए। वह तो सत्य का एक स्वरूप है और सदा सत्य ही होता है। और, आज तो सचमुच सत्य ही निकला। मैं आज आपको अपनी आँखों में लिए ही उठी थी—देखिए, आप आ ही गए !·· हाँ, जीजी भी आई हैं क्या ?'

'नहीं तो !'

'हाँ, उन्हें आप क्यों लाइएगा ?'

'यों ही चला आया। ठीक से प्रोग्राम बनता तो वह जरूर आतीं।'

'मगर यह मुँह क्यों लटका है ? जरूर किसी से झड़प हो गई है—कुलियों से या ताँगेवाले से ?'

'धत् !···हाँ, मैं तो भूल ही रहा था। 'साइकॉलॉजी' ले रखी है तुमने—मानव-मन का अध्ययन भी तो करना ठहरा। बस, आज मुझ पर ही प्रयोग हो जाय !'

दोनों खिलखिला पड़े।

अजीत कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करता रहा। आज माला को इतना प्रसन्न देखकर उसका जी न चाहता था कि बेतुकी बातें छेड़कर रंग में भंग डाले। मगर करता क्या ? दुपहरी की गाड़ी से लौट जाना है—आजभर की ही छुट्टी ठहरी। फिर जिस मिशन पर वह बुलाया गया है, उसे तो पूरा करना ही है। उसने डरते-सहमते छेड़ा—'माला ! एक जरूरी काम से आज मुझे यहाँ आना पड़ा। तुम्हारी दीदी का तार गया था······।'

माला का माथा ठनका—वह ताड़ गई।

'ओ ! तो इस पाप के आप भी भागीदार होना चाहते

हैं ?'—उसने तेवर बदलते हुए कहा ।

'क्या मज़ाक कर रही हो ? पाप कैसा ?'

'तो इसे पुण्य ही कहिए । लीजिए, काशी में सभी पुण्य कमाने आते हैं । आप भी शायद इसीलिए आए हैं ।'

'देखो, बात समझो । नाहक नाराज़ होने से बात बनती नहीं ।'

'तो आप बिगड़ी हुई बात को बनाना चाहते हैं ? मुझ पर रहम कीजिए अजीत बाबू—रहम । मैं आपसे दया की भीख माँगती हूँ—दया की । मुझे क्षमा करें—मुझे बख्श दें । मैं जहाँ हूँ, जैसी हूँ—खुश हूँ, सन्तुष्ट हूँ । क्या मेरी खुशी आपकी खुशी न होगी ? क्या मैं आपकी कोई नहीं ? क्या आपसे एक सहारा—एक सहायता माँगने का भी मेरा हक़ नहीं ? अगर आपको मेरे लिए कुछ भी ख्याल है तो हाथ जोड़ती हूँ, आप मुझे ऐसी राय न दें ।'

अजीत ने देखा—माला एकाएक बहुत भावुक हो गई । उसके चेहरे की मुद्रा अचानक बदल गई ।

'मैं तुम्हें···तुम्हारी बातों को समझ नहीं रहा हूँ माला ! आखिर तुम क्यों ऐसा···?'

'अजीत बाबू ! अब मुझे समझाने की कोशिश न करें—न करें । उससे न आपके हाथ कुछ आएगा, न मेरे ।···पर

भगवान के लिए पत्थर न बनिए। यदि मेरे भगवान नहीं बन सकते तो इन्सान तो बने रहिए। वही सही।' वह फफक-फफक कर रोने लगी।

अजीत चुप है—किंकर्त्तव्यविमूढ़।

'आँसू पोंछो माला! क्या लड़कपन कर रही हो!····तुम्हारे जीजाजी तथा दीदी तुम्हारी भलाई के लिए ही यह सब सोच रहे हैं। फिर····।'

अजीत ने देखा—उसकी आँखों के आँसू सूख चले और वह उन्मादिनी-सी एक अजब आवेश में फुफकार उठी—'अजीत बाबू! आप···हाँ-हाँ, आप···मेरे विवाह का प्रस्ताव लेकर आए हैं?···हाँ-हाँ, आप····उफ़····आप····मेरी मृत्यु का प्रस्ताव—मेरे सर्वनाश का प्रस्ताव···अरे, आप····? यह दिन देखने के पहले मैं मर क्यों न गई? आप पागल तो नहीं हो गए—पागल!—आपके मुँह से ऐसी······हाँ,······आपके······? हे भगवान्! धरती फट जाती और मैं समा जाती—इस क्रूर संसार से राहत मिलती।····आप···अजीत बाबू···हाँ-हाँ,····आप···आपके मुख से ऐसी बात? ओह! उफ़!!—मैं कहाँ भाग जाऊँ?—कहाँ समा जाऊँ?'—वह तकिए में सर छुपाकर सुबक-सुबक कर रोने लगी।

अजीत सचमुच पागल-सा हो गया। यह दृश्य किसी के

लिए असह्य है। वह पागल की तरह उठा और स्टेशन की ओर लपका। कभी किसी से टकरा जाता—कभी किसी गाड़ी के नीचे आते-आते बच जाता। इसे खुद पता नहीं वह कब और कैसे अपने घर लौट आया। वह बीमार-सा हो गया है। किरण जब पूछती—'अब तबीयत कैसी है?'—तो कहता—'रह-रहकर सर फटा जा रहा है। जाने कितनी कोडोपायरिन की गोलियाँ खा गया मगर कोई असर नहीं। उफ़! कितना दर्दनाक दृश्य था वह!'

'कौन-सा···?'

वह चुप है। किरण समझती—रेल से कोई कट गया होगा—वही भयानक दृश्य देखकर ये विचलित हो गए हैं।

❖

'प्रिय माला,

मैं आज भी बीमार हूँ। किसी काम में जी नहीं लगता। सोचता हूँ, दूर—बहुत दूर—कहीं अकेला चला जाऊँ जहाँ किसी मानव से—उसकी छाया से भी भेंट न हो। मगर शायद वहाँ भी मुझे राहत न मिले—शान्ति न मिले। जीवन में कभी-कभी अनजाने ही बड़ी भूल हो जाती है जिसका कोई निदान नहीं—निकास का कोई रास्ता नहीं। तब हम समझते हैं कि अपने को सर्वशक्तिमान् समझनेवाला मानव कितना शक्तिहीन है—कितना छोटा! उस दिन तुम्हें ऐसी दयनीय अवस्था में छोड़कर मैं कैसे यहाँ चला आया—यह आज भी एक पहेली है—पहेली।····तुम्हारा रूप नहीं, स्वरूप देखा था उस दिन। घायल हरिणी की तरह छटपटा रही थी तुम। उफ़, किस मर्माहत अवस्था में थी तुम! परन्तु मैं····हाँ-हाँ····मैं····एकटक तुम्हारी व्यथा को—तुम्हारी पीड़ा को देख रहा था—एक निस्सहाय व्यक्ति की तरह। तुम

शायद निदान चाहती थी, परन्तु मैं निदान न था—और आज तो तुम्हारी पीड़ा-व्यथा का अजस्र स्रोत ही हो गया हूँ।

यह कैसी विडम्बना ! मैं तुम्हें सुख न दे सका—न सही, यह पीड़ा—यह व्यथा तो न देता ! परन्तु यह क्या, सारी अशान्ति का मूल कारण आज मैं ही हूँ।······परन्तु माला ! एक बात कह दूँ···बुरा न लेना······उस दिन से तुमसे कुछ कहने में भी मुझे डर लगता है। एक भूल का निदान दूसरी भूल नहीं है।······फिर जिन्दगी का सफ़र बहुत लम्बा है। भावनाओं की मौज पर जिन्दगी की नौका अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाती। यदि भावनाओं-विचारों पर ही कोई जी पाता तो इस अभागे पेट की बड़ी दुर्दशा होती। कोई इसे पूछता ही नहीं।······फिर तुम एक नारी हो···नारी—तुम्हें एक नीड़ चाहिए—एक सहारा—एक प्रेमी। कहीं दुनिया यह न समझे कि अजीत और माला की आत्मीयता में शरीर की लिप्सा है—एक भूल। हम सफाई देना नहीं चाहते। परन्तु संसार शायद हमसे सफाई चाहता है—और उसकी माँग के औचित्यपर कोई तकरार नहीं। उसका हक़ ही है सरासर। अब आगे तुम सोचो। मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं।····

तुम्हारा—
अजीत'

भागते किनारे

कॉलेज से लौटने पर माला को अजीत का पत्र मिला। उदास-सी रहती है वह। उन्मन-अशान्त। पत्र देखते ही क्षण-भर को उसके चेहरे पर हँसी नाच गई। तुरत खोला। उम्मीद थी, एक सहारा—एक संकेत—मिलेगा उसे। मगर हाय राम! —'है चिता की राख कर में माँगती सिन्दूर दुनिया!' और, अजीत बाबू भी उसी दुनिया के एक व्यक्ति हैं, उससे परे नहीं —उससे दूर नहीं। उफ़, अजीत बाबू! आपसे यह उम्मीद न थी। एक विश्वास बँध गया था कि आप अग्निपरीक्षा के लिए मुझे बाध्य नहीं करेंगे। परन्तु अजीत बाबू, आप भी ……हाँ-हाँ, आप भी मेरी परीक्षा लेना ही चाहते हैं—मेरी! सीता की अग्निपरीक्षा ने राम को शायद सन्तोष नहीं दिया। उसे दुबारे जंगल की राह लेनी पड़ी। आश्रम का जीवन अंगीकार करना पड़ा। फिर लवकुश का जन्म हुआ। आप कहते हैं कि संसार यह न समझे कि माला ऐसी है—अजीत बाबू वैसे हैं। बस, इसीलिए मैं आग में कूद जाऊँ!

यह कैसा न्याय अजीत बाबू? यह कौन-सी दलील? हाँ, राम ने सीता को आग में खड़ा कर दिया। आप भी तो पुरुष हैं—राम की ही कड़ी की एक…।

…तो माला आग में खड़ी कर दी जाय। यदि भस्म

हो गई तो उसके तेज में खोट है और सोने की तरह निखर कर निकल आई तो पवित्र है—पवित्र ! ......आप भी यही न चाहते हैं—यही न ? तनिक भी दया न करेंगे—परीक्षा चाहते हैं ? इस जाँच की यातना से नजात न देंगे क्योंकि सफाई चाहते हैं—एक गवाही भी ? खूब ! खूब !!

वह हँसती रही—हँसती रही ।

✤

३

दीवारों के भी कान होते हैं। वे गुप्त से गुप्त बातें सुन लेती हैं और सदियों बोलती रहती हैं। फतेहपुर सिकरी के महलों की दीवारें आज भी जाने कितनी कहानियाँ सुनाती रहती हैं—कितनी दिलकश, कैसी बेजोड़! कोई कान देकर, क्षण भर समय देकर उनकी अटपटी वाणी समझने की ज़रा कोशिश तो करे, जाने कितने-कितने सनसनीखेज रहस्य उद्‌घाटित हो जाएँगे। परन्तु……उस सुसज्जित सुवासित शयनकक्ष की दीवारें जिनके घेरे में माला अरुणकुमार के साथ अपने पावन-परिणय की प्रथम रात्रि बिता रही है—केवल इतना ही सुन सकीं—'यदि मैं आपसे क्षमा भी पा सकती हूँ तो आप मुझे क्षमा कर देंगे। आपकी नज़रों में यदि यह एक बड़ा अपराध है तो अपराध ही सही परन्तु मैं……मैं……।'

दीवारों ने पूरा प्रयास किया कि कुछ और पंक्तियाँ सुन

पड़े—कुछ और भी ऊपर या नीचे की कड़ियाँ पकड़ में आ पाएँ, मगर सारी कोशिशें बेकार रहीं—व्यर्थ। बस, उन्होंने आँखें फाड़-फाड़कर इतना ही देखा—जैसे बिजली की 'करेन्ट' लग गई हो, अरुण अपने अंक में घिरी उस नववधू को सुसज्जित पलंग पर अकेली छोड़ एक झटके से कूद कर दूर जा खड़ा हुआ और कमरे की सारी खिड़कियाँ खोल जोर-जोर से साँस लेकर ठण्डी हवा में अपनी घुटन मिटाने लगा। माला घायल हरिणी की तरह पलंग पर पड़ी-पड़ी रातभर छटपटाती रही और अरुण सारी बत्तियों को बुझाकर खिड़की के पास बैठा-बैठा उस तारों से भरे अन्धेरे आकाश को निहारता रहा—कुछ ढूँढ़ता रहा—याद करता रहा अपनी प्यारी विभा को जिसकी आवाजें अन्तरिक्ष में आज भी गूँजती रहती हैं—काँपती रहती हैं—'मेरे ही लिए सही, तुम शादी जरूर कर लेना—जरूर कर लेना।' क्या इसी दिन के लिए?....हाँ-हाँ, इसी दिन के लिए!!

—कि रात बीत गई।

अरुण आँख मलते कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और अँगड़ाई लेते शीशे के सामने खड़ा हो बाल ठीक करने लगा। शीशे पर नजर पड़ते ही वह चौंक पड़ा। उसे जान पड़ा कि उसकी उम्र अनायास दस साल बढ़ गई है। रात भर में क्या वे

क्या हो गया! रात और प्रात में इतना अन्तर—इतना भेद! उषा के आगमन के साथ जिन्दगी ने एक नई करवट ली—भविष्य ने एक नया पन्ना उलटा।

उधर माला पलंग पर बेसुध पड़ी है, बेखबर। उसे गहरी नींद आ गई है—कब और कैसे, वही जाने।

पुरुष और नारी—नारी और पुरुष—विधि के हाथों गढ़ी दो अप्रतिम प्रतिमाएँ, एक ही प्रतिमा में जड़ी आँखों की दो पुतलियाँ, एक ही तने की दो डालियाँ, एक ही डाली की दो टहनियाँ—बाहर से दो, अन्तर में एक; परन्तु फिर भी दोनों में कितना अन्तर—कितना दुराव! एक धरती, दूसरा आसमान। एक मोम, दूसरा वज्र। एक सब-कुछ सह कर भी चुप, दूसरा एक खुट् पर तूफ़ान उठाने को तैयार। एक छाती तले अंगार को भी तुषार-सदृश छिपाकर रखे मुँह से 'सी' न करती, हँसती-बोलती बेलौस चली जाती है और दूसरा—उफ़, दूसरा—कोई भी समझौता करने को तैयार नहीं—कोई भी शर्त उसे मंजूर नहीं—कोई भी अपराध क्षम्य नहीं। किरण ने पहली रात अजीत की पहली बात की जो कुछ भी कहानी जानी-सुनी उसे अनजानी-अनसुनी की तरह तह में डाल दिया और अजीत के साथ वह पूरी आत्मीयता

के साथ रह रही है मगर अरुण........! कुछ भी भूल न सका, भुला न सका।

'उठो! उठो माला! काफ़ी दिन चढ़ आया। आज ही इलाहाबाद चल देना है।'

माला धड़फड़ाकर उठ बैठी। आँचल सम्भालती बोली—'आपने कहा था परसों चलेंगे।' आज ही चले जाने से घर-वाले क्या कहेंगे? भैया और जीजी नाराज़ होंगे। मैं नई बहू जो ठहरी! कल आई और...आज ही...।'

'दो दिन यहाँ बर्बाद करने से फ़ायदा? कल ही 'ज्वायन' कर लूँगा तो दो दिन के 'कैजुअल लीव' बच जाएँगे।

'जैसी आपकी मर्ज़ी—।' माला चुप हो गई।

स्टेशन पर माला को छोड़ने सभी आए। उसकी नई जीजी, भैया, जीजाजी, दीदी और अजीत भी।

माला की छाती के अन्दर का घाव अन्दर-ही-अन्दर जो टीसे, बाहर चेहरे पर कोई भी भाव-रेखा उभर-बिखर नहीं रही है। वह अपने डब्बे में लाल कपड़े की गठरी बनाकर रख दी गई है। अरुण बाहर प्लेटफ़ार्म पर अपने घर के तथा ससुराल के रिश्तेदारों से मिलने में व्यस्त है। फिर दीदी और जीजाजी माला के पास आकर बेंच पर बैठ गए।

'देखो तो, दुल्हिन के रूप में माला कितनी अच्छी लग रही है!'—दीदी ने कहा।

'हाँ, तुमसे तो कहीं अच्छी लगती है!'—जीजाजी ने व्यंग्य किया।

'हटो, तुम्हें तो हर वक्त मजाक ही सूझता है।.......माला! इतनी चुप-चुप-सी क्यों हो? नई शादी, नया दुल्हा; नई उमंग, नया उत्साह.......'

माला कुछ अजीब-सी करने लगी। दीदी और जीजाजी को लगा—नई-नई दुल्हिन बनी है, कुछ घबड़ा-सी गई है।

'माला! तुम सदा प्रसन्न रहा करो। प्रसन्न रहना भी एक कला है। समझी?'—राज ने गाड़ी से उतरते-उतरते कहा।

गाड़ी ने सीटी दी, सभी से विदा ली और चल पड़ी। माला की आँखें अनायास ही चंचल हो उठीं—किसी को खोजने लगीं, फिर उसी पर क्षणभर को अटक गईं। अजीत ने शादी के बाद आज पहली बार देखा कि उसकी आँखों में संसार की सारी व्यथा, सारी करुणा आकर सिमट गई है। उफ़! उसका जी जाने कैसा करने लगा। गाड़ी के साथ-ही-साथ सभी बढ़ने लगे। अजीत की बगल में राज है। उसके कन्धे थप-थपाते हुए उसने कहा—'अजीत! तुम्हारे एहसान को मैं कभी न भूलूँगा। तुमने माला को बचा लिया।'

अजीत कुछ उत्तर न दे सका। उसका गला भरा है, मन भरा है, तन भरा है। मगर···आँखें सूखी हैं—सूनी हैं।

गाड़ी हवा पर उड़ी चली जा रही है। अरुण अखबार के पन्ने उलट रहा है। माला अपने जीवन के पिछले पन्ने उलट रही है···उलटती चली जा रही है—

माँ की आँखों में जैसे बाढ़ आ गई है। रात-दिन रोती-कलपती रहती है। दीदी-जीजाजी के ताने छाती को छलनी किए देते हैं और अजीत का आदर्शवादी जीवन उसके जीवन को नया मोड़ लेने को बाध्य कर रहा है। साथ-ही-साथ शतरंज के खिलाड़ी विधाता की भी बन आती है—दीदी की सास की गोटी लाल हो जाती है और उनके विधुर रिश्तेदार श्री अमृतचन्द्र उसके भावी पति चुन लिए जाते हैं। इस चुनाव में चाहे-अनचाहे सभी ने मुहर मार दी।

परिवर्त्तन ही संसार का नियम है और आशा इस परिवर्त्तन के वातावरण में एक जान, एक प्राण भरती रहती है। इलाहाबाद आने के उपरान्त अरुण ने सोचा कि जीवन का नया अध्याय शायद दोनों के लिए श्रेयस्कर हो। बाढ़ का पानी या ज्वार की लहरें जब निकल जाती हैं तो पुण्य-सलिला जाह्नवी शान्त हो स्थिर गति से बहने लगती है।

इलाहाबाद सिविल लाइन्स में अरुणचन्द्र का एक छोटा-सा खूबसूरत बंगला है—सजा-सजाया और रंग-रोशनी से भरपूर। आज इस घर की मालकिन बनकर माला इलाहाबाद पहुंची है। नया घर, नया वातावरण, नए लोग-बाग। अरुणचन्द्र के नौकर मातादीन और चपरासी शिवमंगल ने नई मालकिन को आकर सलाम किया। 'किचन' में नया क्रॉ-केरी से अलमारी भी फिट हुई और एक नया डबल-बेड बना

था उसे शो-रूम से मँगाकर शयनकक्ष में फिट कराया गया।

'माला! आज मेरे 'बॉस' मि० भल्ला के यहाँ पार्टी है। यहाँ हमारे पहुँचने की सूचना पाते ही उन्होंने फोन से हमें आमन्त्रित कर दिया है। शादी की पार्टी ठहरी, ऑफिस के बहुत लोग आएँगे। जरा खूब बन-ठनकर...।'—अरुण ने हँसते हुए आँखें मटका दीं। माला ने मुस्कुरा दिया।

मातादीन की बीवी पन्ना ने अपने पति के साथ 'किचेन' में भिड़कर अपनी नई मालकिन के लिए बड़े अच्छे-अच्छे पकवान बनाए हैं। मेज पर जब वे खा रहे थे तो वह झाँक-झाँक कर देख जाती कि मालकिन कौन-कौन पकवान मन से खा रही हैं। खाना खत्म होते ही वह मालकिन की थाली भी देख गई कि उन्हें खाना रुचा या नहीं। माला ने बहुत कम ही खाया—हालाँ कि अरुण की राय रही कि वह भी उतना ही खाए जितना वह खा रहा है। जो चीज वह नहीं लेती उसे वह जबर्दस्ती उसकी थाली में रख देता।

सन्ध्या समय बहुत जल्द ही तैयार हो अरुण लॉन में आकर बैठ गया। माला किवाड़ बन्द कर अपना शृङ्गार कर रही है। अमीरों की मजलिस में दुल्हिन बनकर जाने का यह पहला मौक़ा है। कौन साड़ी पहने, कौन नहीं! दीदी ने तो सारी शिक्षा दे दी थी—सन्ध्या की पार्टी में यह 'कलर', रात

के लिए दूसरा 'कलर' और सुबह में कुछ और। इधर अरुण की राय कि वह दुल्हिन बनकर चले। फिर उसने लाल टेस बनारसी साड़ी निकाल ली और गहनों से अपने को गूँथ लिया। अरुण ने बहुत हल्ला मचाया तो पाजेब भी पहन ली और खूब बन-ठन कर बाहर चली आई। अरुण ने उसे निहारा, हँस पड़ा—'हाँ, खूब बनी हो! मिसेज भल्ला अब तुम्हें जरूर पसन्द करेंगी। चलो, देर हो रही है। गाड़ी लगी है।'

गाड़ी में सवार होते ही उसे धक्-से लगा—माला! ....हाँ-हाँ, माला! तुम ठीक उसी तरह लग रही हो जैसे किसी दूकान में निर्जीव मॉडल को खूब सुन्दर साड़ी-ब्लाउज पहनाकर शो-केस में रख दिया गया हो।—'स्टेचू' सदृश। कोई भाव नहीं, कोई उतार-चढ़ाव नहीं...यह क्या!...नहीं-नहीं।....

गाड़ी भल्ला साहब की पोर्टिको में पहुँच गई। मिसेज भल्ला बड़े प्रेम से दोनों को उतार कर 'मेन टेबुल' पर ले गईं। पार्टी में ऑफिस के सभी बड़े-छोटे अफसर पधारे हैं। शहर के कितने नामीगरामी रईस भी हैं। पुरुषों से स्त्रियों की संख्या ज्यादा है। मिस्टर और मिसेज भल्ला दुल्हा-दुल्हिन को हर मेज पर ले गए और मेहमानों से परिचय कराया। माला इस 'फॉरमेलिटी' में डूबी जा रही है। भारी लकदक साज-

शृङ्गार, नए-नए अजनबी लोग, 'खुश रहो'—'तुम्हारा सुहाग अचल रहे' का तुमुल स्वर, 'नमस्ते'—'प्रणाम'—'सलाम' के नए-नए तौर-तरीक़े ! उफ़ ! माला परीशान है। इन सारी बातों में उसे कोई दिलचस्पी नहीं। फिर भी दिल रमाना है—मन मनाना है।

मि॰भल्ला ने अपनी बेटी माया को दुलारकर कहा—'दुल्हिन बहुत थक गई। माया ! पंखा चलाकर इसे ड्राइंग-रूम में बिठाओ। मैं मेहमानों को विदा कर अभी आती हूँ।'

माला को राहत मिली। इस कवायद से जान बची।

मिसेज़ भल्ला के ड्राइंग-रूम में आवाज़ें छन-छनकर चली आती हैं—'अमाँ अरुण ! बीवी तो बड़ी अच्छी पाई है ! लाख में एक ! मुबारक हो !'

'हाँ भाई, अच्छा 'सेलेक्शन' है। मगर हो तुम बड़े तगड़े मंगला—कहीं पहली जैसी इसे भी खो मत देना।'

'तुम हो बुद्धू ! आज शुभ दिन को क्या अनाप-शनाप बकते हो ? हमलोगों ने मंगली ही लड़की इस बार चुनी है !'

'क्या खोने के लिए ही इसे पाया है ? यह भी अच्छी रही ! आशीर्वाद दो कि······।'

'अवश्य, अवश्य !'

× × ×

'कहो माला ! आज पार्टी कैसी रही ?'—घर लौटने पर अरुणचन्द्र ने पूछा।

'बड़ी अच्छी रही। सभी लोग बड़े प्रेम से मुझसे मिले। मिसेज भल्ला तथा उनकी बेटी माया तो सबमें बड़ी अच्छी लगीं। सारे परिवार का मिजाज बड़ा अच्छा है।'

'हाँ, तुम्हें यहाँ बड़ी अच्छी 'कम्पनी' मिलेगी। जब जी घबड़ाए अकेले-अकेले, तो माया को बुला लेना या उन्हीं के घर चली जाना। फिर अगल-बगल अफसरों की बीवियाँ भी रहती हैं। उनके यहाँ भी आने-जाने का सिलसिला रहेगा।'

'हाँ, यहाँ 'कम्पनी' अच्छी रहेगी—यही मेरा भी ख्याल है। फिर जहाँ आप है, वहाँ मन न लगने का सवाल ही नहीं उठता। जब आप दौरे पर चले जाएँगे या ऑफिस में बहुत देर लगा देंगे तभी जी घबड़ाएगा और कम्पनी की खोज होगी। नहीं तो अपनी ही कम्पनी कौन कमज़ोर है ? घर में पन्ना भी कम दिलचस्प औरत नहीं है। मुझे तो बड़ी भली लगती है वह। आज दिनभर में ही मुझे बड़ी आत्मीयता हो आई उससे। बराबर हँसती रहती है—हंसाती रहती है।'

माला हँसने लगी। अरुण की बाछें खिल आईं। शादी के बाद आज पहली बार माला की बातें सुनकर वह हर्षोल्लास से थिरकने लगा।

'माला ! तुम्हें पाकर मैं सब-कुछ पा गया। मुझे नई ज़िन्दगी मिली, नया संसार मिला। समझो कि 'लाइफ' में 'सेट्ल' करने के बाद आज पहली बार मुझे एक घर मिला—एक परिवार मिला—एक आशा मिली।' भाव-विह्वल हो उसने माला की कोमल उँगलियों को अपने हाथों में ले लिया। वे सर्द थीं—बेजान, मगर उसके लहू की गर्मी ने उनमें भी कुछ जान डाल दी।

'पिछले दिनों को हम भूल जाएँ माला ! अतीत हमारा बड़ा विषम रहा है। भूत को भूलकर वर्त्तमान और भविष्य को बनाना ही बुद्धिमत्ता है।

'जो बीत गई सो बात गई, जो चला गया सो चला गया···
तुम पूछो टूटे तारों से कब अम्बर शोक मनाता है !'

क्या सचमुच 'जो बीत गई सो बात गई ?'···सचमुच ? ···नहीं-नहीं, वही तो मेरी निधि है—जीवन की प्रेरक शक्ति ! यदि वही मिट जाए तो जीवन में क्या रस मिलेगा ! यदि उसकी याद खो दूँ तो किसके लिए जीऊँ, किसके लिए हँसूँ ? —अरुण के अंक में घिरी माला 'डबल बेड' पर पड़ी-पड़ी सर चीरती जा रही है कि अरुण पूछ बैठता है—'तुम्हारे अधरों पर कोई स्फुरण नहीं—निस्पन्द-निष्प्राण, आँखों में

खामोशी—डरावनी खामोशी, शरीर में बर्फ की सर्दी—यह सब क्या माला ? क्यों माला ?'

अल्ला की आँखों में सुर्खी है। वे खुल-खुलकर बन्द हो जाती हैं। माला हँस देती है—यदि रोशनी रहती तो अल्ला उसके चेहरे का व्यंग्य परखकर उसे पलंग से दूर फेंक देता, किन्तु अन्धकार कभी-कभी जीवन के कितने पापों को ढँक लेता है। आज माला को भी उसने बचा लिया—छिपा लिया। यदि यह पाप है तो पाप ही सही। अभिशाप है तो अभिशाप ही सही।

माला अपने पतिदेव के लिए नाश्ता बना रही है। अरुण ने कहा कि उसके हाथ की छनी पूरियाँ बड़ी मुलायम होती हैं तो माला ने ज़िद पकड़ ली कि आज नाश्ता वही बनाएगी।

'यह क्या तमाशा खड़ा कर रखा है तुमने? इतनी पूरियाँ कौन खाएगा? चलो, एक साथ बैठकर खाएँ।'

'नहीं, आप मेज पर बैठिए। मैं गरम-गरम छान कर पन्ना से भेजती जाऊँगी। आपको देर हो जाएगी। मैं फिर खा लूँगी। मातादीन, शिवमंगल तथा पन्ना सभी को दो-चार पूरियाँ आज नाश्ते में दूँगी।'

'जैसी आपकी मर्ज़ी।'

अरुण मेज पर है—गरम-गरम पूरियाँ सब्जी के साथ खा रहा है और सुघर गृहिणी पाने का सुख भोग रहा है। उधर माला पूरियाँ छान रही है—चुप, गुमसुम।

'आजकल मालकिन बड़ी गुमसुम रहती हैं। मालूम होता है, माँ का घर बहुत याद आ रहा है....।' पन्ना ने पूछा।

'हाँ री पन्ना! रहती हूँ—रहती हूँ, कभी जी एकदम उचट जाता है—किसी काम में मन नहीं लगता। लाख जी रमाने की कोशिश करती हूँ, मगर कुछ करने को जी नहीं करता।'

'जब मैं भी पहली बार आई थी शादी के बाद तो मेरी भी कुछ-कुछ यही हालत रही। इसीलिए पहली बार बेटी जल्द ही बुला ली जाती है। मैं तो दो-चार दिन बाद ही मैके चली गई थी।'

'तुम्हारी बात कुछ और रही होगी पन्ना! यहाँ तो—।'

'वाह, आप भी कैसी बातें करती हैं!'—वह हीं-ही करके हँसने लगी।

माला चौके से आकर खाने की मेज पर बैठी है। अरुण नाश्ता खतम कर सिगरेट का कश ले रहा है। पूछता है—'आज चलोगी देवदास देखने? नया रील आया है उसका। किसी ज़माने में वह अपने ढंग का अनोखा चित्र था।'

'देवदास!....!!' उसका कलेजा धक्-से कर गया। अरुण ने देखा, उसकी सूरत पर एक परेशानी—एक उदासी छा गई।

'......................।'

'तो मँगाऊँ दो टिकट? भल्ला-परिवार भी आज जा रहा है।'

'अभी जल्दी क्या है? शाम को तय किया जाएगा।' उसने बात टाल दी। मन दौड़ गया चित्रा सिनेमा की पौर पर। एक रील तैयार हुआ उस दिन, जो नित नए-नए रील तैयार करती रही—करती गई और जिसकी समाप्ति.........नहीं-नहीं 'इन्टरवल' आ गया है। समाप्ति या 'इन्टरवल'—'इन्टरवल' या समाप्ति—एक-दूसरे के पूरक, एक-दूसरे से भिन्न।

पूरियाँ आईं—माला ने छूकर छोड़ दीं, चाय आई—माला ने ठण्डी का बहाना कर प्याली टरका दी। फल का 'डिश' आया, उसने यों ही टाल दिया। अरुण तमाशा देख रहा है, मगर कुछ कहता नहीं।........

कि डाकिए ने पत्रों का अम्बार लाकर वहाँ रख दिया। अरुण हरेक लिफाफे को उलट-पुलटकर देखता है, फिर रख देता है।

'माला! तुम्हारी आज दो चिट्ठियाँ हैं। एक लिफाफे पर तो माताजी की लिखावट है और दूसरे पर शायद राज बाबू की.......नहीं, पता नहीं किसकी।'

'देखूँ—' उसके चेहरे की उदासी उड़ने लगी।

'ओ ! यह तो अजीत बाबू की है। बड़े इन्त.........
ऊँह...!' वह अपने को जब्त कर चुप हो गई, मगर चेहरे पर, अंग-अंग में उमंग दौड़ गई जो अरुण की निगाहों से भी छिप न सकी।

किसी भी अनायास सहज स्फुरण को कोई भी प्राणी छिपा नहीं सकता। यह उसके मान का नहीं।

अरुण मेज पर से उठा और 'ड्राइंग-रूम' में जाकर फाइलों में डूब गया। और, माला लिफाफा खोलकर झट अजीत का पत्र पढ़ने लगी।

'प्रिय माला !

बरातियों और सरातियों को विदा करने में मैं इतना मशगूल था कि तुम्हें तुम्हारे नए जीवन के लिए बधाई भी नहीं भेज सका। मेरी शुभकामनाएँ तुम्हारे साथ हैं। तुम्हारे पतिदेव से भी ठीक-ठीक भेंट नहीं हुई। बस, प्रणाम-पाती ही हो पाई। श्री अरुणचन्द्र मुझे एक संभ्रान्त सज्जन दीख पड़े। ऐसे सुन्दर और सज्जन पुरुष से सान्निध्य बहुत पुण्य करने पर ही मिलता है। माला ! सचमुच तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो। मुझे आशा है—नहीं-नहीं, विश्वास है, तुमने नए जीवन को सहर्ष अंगीकार किया और बराबर खुशी रहोगी। भला

अरुण बाबू ऐसे सुशील पति के साथ कौन स्त्री सुखी न रहेगी!'

मााताजी बहुत प्रसन्न हैं। राज बाबू तथा लताजी भी। माताजी ने बाबा विश्वनाथ के यहाँ जाकर मिन्नतें उतारीं और दोनों दामादों के दीर्घ जीवन की प्रार्थना की। जब मैं उनसे विदा ले रहा था तो उनकी आँखों में खुशी के आँसू छलछला आए। मेरे दोनों हाथों को चूमते हुए उन्होंने कहा—'बेटा! मुझे अब बड़ी शान्ति मिली। दोनों शादियाँ बाबा विश्वनाथ की कृपा से एक-से-एक अच्छी हो गईं। अब मैं सुख से मर सकूँगी। हाँ, तुम मेरी खोज-खबर बराबर लेते रहना। मैं तो अब अकेली ही ठहरी—तुम्हारे ही भरोसे रह पड़ी रहूँगी। दो-दो शादियों को निबटाकर मैं अब छूछी हो गई हूँ। घर में एक पैसा नहीं।' मैंने भी उन्हें पूरा आश्वासन दिया। उन्हें बड़ा सन्तोष, बड़ा सुख मिला। तुम्हारे चले जाने के बाद माँ का घर सूना-सूना-सा हो गया। हर ओर तुम्हारी आकृति नाचती रही—हर ओर तुम्हारी आवाज़ गूँजती रही। बेटी की ममता जो ठहरी! तुमने अपना सितार क्यों छोड़ दिया? कोई जाएगा उधर, तो माताजी भेज देंगी।

···अभी-अभी अखबारों में पढ़ा कि इलाहाबाद में 'देवदास' चल रहा है। यहीं से जी ललच रहा है देखने को।

तुम ज़रूर आकर देखना। मेरा प्रिय मेल।...अहमा बाबू से मेरा नमस्ते कहना।

तुम्हारा—
अजीत'

माला का अंग-अंग नाचने लगा है। इलाहाबाद 'सिविल लाइन्स' के गमगम वातावरण में आज अजीत का पत्र एक उमंग एवं एक उल्लासमय काव्य अपने साथ लेता आया। पत्र लिए वह ड्राइंग रूम में पहुँची और अनजाने कहती गई—'लीजिए, आप भी पढ़ लीजिए। आपको भी नमस्ते आया है। मेरे लिए शुभकामनाएँ। चलिए, दो टिकट मँगाइए आज और देवदास देख आया जाय। बड़ा सुन्दर खेल है। मैं इसे कई बार देख चुकी हूँ। आखिर आज फिर...।' वह एक सुर में कहती गई, जाने क्या-क्या बोल गई।

'ओह! आज तो तुम्हारे पैर ज़मीन पर पड़ते ही नहीं। आखिर बात क्या है? पागलों की तरह—'

'नहीं-नहीं, अभी शिवमंगल को भेजकर दो टिकट मँगाइए। फिर सीट मिलना मुहाल हो जाएगा।'

'पगली! दो सीट का इन्तजाम तो मैं खुद कर लूँगा। तुम क्यों परीशान होती हो?'

माला पत्र लिए अपने कमरे में चली गई और बार-बार

पढ़ने लगी। बीच-बीच में हँसती जाती, खिलखिलाती रहती।

ऑफिस जाने के पहले अरुण जब अपने कमरे में आया टाई बाँधने और कोट पहनने तो माला उसके हाथों से टाई जबर्दस्ती छीनकर अपने हाथों उसका 'नॉट' बनाने लगी।

'ओह! बड़ी कृपा हो रही है मुझपर! आज सूरज पश्चिम में कैसे उगा!'—अरुण ने आँखें मटकाते हुए कहा।

'लीजिए, कोट पहनिए—सूरज बराबर पश्चिम में ही उगता है!'—माला ने आँखों को नचाते हुए कहा।

दोनों हँस पड़ते हैं। वह अरुण के अंक में अनायास ही चली आती है। फिर होठों पर स्फीत चुम्बन, उनमें सुगबुगाहट—आँखों में नमी।

अरुण ने और भल्ला-परिवार ने देवदास देखा, खूब सराहा, यमुना-बरुआ की बड़ी चर्चा रही, मगर माला ने सब-कुछ देखकर भी कुछ न देखा। वह देखती रही—'देवदास' का अपना रील—'देवदास' का माला-एडिशन।—वह भीड़ ···वह उमस की गर्मी····उसका भूल जाना—फिर मिल जाना ···साइकिल की सवारी···माँ के आँसू···नीचे की दूकान की पकौड़ियाँ····चाट-चटनी···गंगा की गोद में फिरफिरी···वे दिन····वे रातें—सितार के तार से खेल···स्कूल और कॉलेज के

दिन ''सब घटनाएँ एक-एक कर, एक कतार में—देवदास के नए रील की तरह भागती चली जातीं।

'कहो माला, कैसा खेल रहा?'

'ऑं-ऑं—अरे हाँ-हाँ—ओह, बड़ा सुन्दर। जितनी बार देखती हूँ, नवीनता पाती हूँ। यमुना-बरुआ ने तो अपने अभिनय से चार चाँद लगा दिए हैं। और सहगल के गाने—उसकी दर्दभरी आवाज़—वेदना-सी भरी बातें तो भुलाए नहीं भूलतीं।—देवदास—शरत् की अनुपम देन! आपने शरत्-साहित्य पढ़ा है या नहीं?'

'नहीं—।'

'उफ़! आपने आजतक शरत् को नहीं पढ़ा? धन्य हैं आप! मेरे पास उनकी सभी कृतियाँ हैं। मेरी वर्षगाँठ के अवसर पर अजीत बाबू ने एक बार मुझे शरत्-साहित्य ही भेंट किया था। इस बार घर जाऊँगी तो सारी पुस्तकें लाऊँगी। आप उन्हें ज़रूर पढ़ें। देवदास, गृहदाह, श्रीकान्त, शेष प्रश्न, चरित्रहीन। ……'

माला फिर अपने आप में खो गई। अरुण उसे आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा है—देख रहा है।

✣

'मालकिन ! आपको एक वार मैके हो आना चाहिए। जी वहल जाएगा। मगर आप तो घर से बाहर निकलना ही नहीं चाहतीं। वस, दिनभर घर में पड़े-पड़े पढ़ना, सीना, कुछ गुनगुनाना या चौके में जाकर खाना वनाना। इसीलिए आप चुप-चुप-सी रहती हैं। नई-नई वहुएँ दस वहुओं के साथ रहती हैं तो जी वहलता है। ननदों की तोताचश्मी से मन भरा रहता है। और हमारे घर में हैं भी तो वस—वही, एक साहव। आखिर आप उनसे कितनी वातें करेंगी ? वनारस से वड़ी वहू को आकर कुछ दिन यहाँ रहना चाहिए था।—हूँ…साहव वहुत खुश होंगे तो कहेंगे कि भल्ला साहव के यहाँ चलो, माया के साथ खेलो या झट तैयार हो सिनेमा चलो। यह भी लगन में कोई लगन है ? राम ! राम !!'

'क्या बेसिर-पैर की वकती रहती है ? चुप रह।'

'ना मालकिन, इस तरह आपका गुमसुम पड़े-पड़े रहना मुझे नहीं भाता। ज़रा भी नहीं लगता कि नई-नई शादी हुई है। ज़रा कुछ सरगर्मी—कुछ चहल-पहल·······'

'तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है।'

'हाय राम, मैं ही करार दे दी गई पागल? यह लो···· नई वहू का न साज-शृङ्गार देखती हूँ और न हाव-भाव। सदा सादी-सादी-सी दिखती हैं आप। बक्सों में रंगीन साड़ियाँ भरी पड़ी हैं, सेफ में गहने भरे पड़े हैं, मगर हमारी मालकिन को तो सुहाती है आबेरवाँ की सुफेद साड़ी तथा गले में एक सोने की चेन। राम! राम!! क्या रूप बना रखा है आपने!'

'दुर पगली! जा, जा—अपना काम देख।'

'ना, मैं अपना काम देखने न जाऊँगी। बदलिए यह सफेद साड़ी—यह जोगन का रूप। मैं तो अपनी शादी के बाद महीनों चुनरी पहने रहती थी—गहनों से भरी रहती थी। और आप!····राम-राम! यह शोभा नहीं देता।'

पन्ना उसकी मुँहलगी दाई है। दौड़कर बक्स में से एक सुनहली साड़ी निकाल लाई और ज़िद पकड़ ली कि पहनिए इसे—अभी पहनिए।

पन्ना के आग्रह पर माला ने रंगीन सुनहली साड़ी पहन ली और कहा—'लो, अब तो जान छोड़ो!'

'नहीं, अभी नहीं, खोलिए सेफ़ और निकालिए कंगन और गले का हार।'

'दुर, क्या तमाशा बना रही हो मेरा! जा, जा।—'

'नहीं-नहीं, आज तो मैं जाऊँगी नहीं। देखिए, मुहल्ले की सभी स्त्रियाँ मुझसे मजाक करती रहती हैं—कैसी बहू आई है? न साज, न श्रृङ्गार। जोगन ही बनना था तो माँग क्यों भरवाई? छीः, इसकी गोद क्या भरेगी?—मालकिन, सच कहती हूँ, मैं तो उनकी बातों को सुनकर लाज से गड़ जाती हूँ।'

माला हैरत में है। दूर के लोग इन बातों को कैसे जान जाते हैं?

आज पन्ना ने माला को नई बहू के साँचे में ढाल दिया और साहब को आते देखकर दूर सरक गई।

'ओह! सचमुच सूरज पश्चिम में उगता है! बड़ी तैयारी है आज! आज किधर बिजली गिरेगी?'

'आप पर!'

'इतना खुशकिस्मत मैं नहीं हूँ माला!'

'वाह! आप ही के लिए तो यह सब कुछ है—यह सुनहली साड़ी—ये कंगन—ये हार—यह टीका—यह अदा—यह रौनक़!'

'क्या सच कहती हो माला ?'

'तो इसमें भी आपको कोई शक है क्या ?'

'नहीं, नहीं। तुम्हारे इतना ही कहने में मुझे सब कुछ मिल गया—मैं धन्य-धन्य हो गया।'

अरुण ने उसे छाती से लगा लिया। पन्ना पर्दे की ओट से अपना रचा हुआ नाटक देख रही है। हँस रही है—इतरा रही है।

'चलो, अभी भल्ला साहब के यहाँ चलें। तुम्हें इस रूप में देखकर मिसेज भल्ला बहुत खुश होंगी। अभी उस दिन मुझसे शिकायत कर रही थीं कि बहू इतनी सादी-सादी-सी, इतनी गुप-चुप-सी क्यों रहती है ? उसे साज-शृङ्गार किए रहना चाहिए—नई बहू जो ठहरी !'

'क्या आप भी मेरा मजाक उड़वाना चाहते हैं ?'

'मैं ? मजाक तो महल्ले भर से तुम खुद उड़वा रही हो।'

'तो लीजिए, मैं तैयार हूँ। चलिए, अभी चलिए—।'

'वाह ! जरा चाय तो पी लेने दो—कपड़े तो बदल लेने दो—फिर चला जाय।'

आज माला को नई बहू के रूप में देखकर मिसेज भल्ला को कौतूहल तथा आनन्द दोनों आया। बड़े तपाक से मिलीं—

'बस, बहू! यही मैं चाहती हूँ। तुम साज-शृङ्गार न करोगी तो लोग-बाग खुश न होंगे। माया! आज बहू ने मेरे मन-लायक शृङ्गार किया है। चलो, इसका मुँह मीठा करो।'

सब हँस पड़े। माला ने भी हँसने की कोशिश की। मिस्टर भल्ला तथा अरुणचन्द्र ऑफिस के मामलों को लेकर गप्पें करने लगे और मिसेज भल्ला, माला तथा माया ताश पर जुट गईं। खेल में अक्सर माला भूल कर जाती—रहते-रहते कुछ उलट-पुलट कर पत्ते चल देती तो मिसेज भल्ला टोकतीं—'जरा मन लगाओ बहू! कहाँ है मन तुम्हारा! माँ के यहाँ चला गया क्या?'

'नहीं-नहीं, अभी खेल सीख जो रही हूँ मैं!'

'वाह भाभी! इतने दिनों से खेलती हो मगर अभी तक न खेलने आया? क्या गजब करती हो!'

वह हँसने लगती। दो-चार वार फिर कुछ ठीक से खेलती—मगर फिर वही बात। उसका जी न रमा। सर-दर्द का बहाना कर उठ बैठी और घर जाने को तैयार हो गई।

'क्यों, कैसा जी है? इतनी जल्दी क्यों भाग आई?'—रास्ते में अरुण ने पूछा।

'अच्छा ही है।'

'तो फिर.......'

'कुछ नहीं।'

घर आकर उसने सभी कपड़े-गहने उतार दिए और अपने मन की वही सफेद साड़ी और चेन फिर पहन ली।

'ऐ लो! हो गया साज-शृङ्गार? न पहनते देर—न उतारते देर! बहू रानी, कैसा तुम्हारा मिज़ाज हो गया है! तुम्हारी कोई भी थाह मुझे नहीं मिली आज तक।'—पन्ना ने टोक दिया।

'नहीं मिली तो ठीक ही हुआ पन्ना! ये साज-शृङ्गार मेरे लिए गले की फाँस—फन्दे बन जाते हैं। जितनी देर सजी रहती हूँ, एक सजा हो जाती है—उब-चुब होती रहती हूँ। ये बनावटी बख्तर हटे तो भार हल्का हुआ—जान में जान आई।'

'मगर मन तो वैसा का वैसा है! बस, एक कोने में किताब लेकर आप बैठ जाइए और दूसरे में साहब।'

'और हो गया सारा रोमान्स इतने ही में!'

'हाँ! मैं सच-सच कहती हूँ, मुझे तो पता ही नहीं चलता कि आप दोनों की नई-नई शादी हुई है या नहीं!'

'माला रानी! आज मुझे मिठाइयाँ खिलाओ। लो, तुम्हारे अजीत का यह दूसरा पत्र—मन रमाने का एक नया खिलौना।' कहते अरुणचन्द्र ने कमरे में प्रवेश किया। माला शरमा

गई—लाज से हाथ नहीं चढ़ा रही थी मगर चेहरे पर हँसी लौट गई। लाज और आनन्द दोनों से मिली-जुली हँसी—एक-से-एक में गुँथी हुई हँसी।

अरुण ने देखा कि क्षण भर में उसकी काया ही पलट गई—सृष्टि ही बदल गई। क्या यह वही माला है—वही? नहीं-नहीं। लाख छिपने का प्रयास करती, परन्तु क्या छिप पाती? अरुण ने फाइलों के अम्बार में अपना मुँह छिपा लिया और गुनगुनाता रहा—'साफ़ छिपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं!'

✠

अजीत की मेज पर एक अटैची पड़ी रहती है जिसमें पत्रों की एक फाइल रखी है। जब वह ऑफिस जाने लगता है तो उस अटैची में ताला लगा देता है। रात्रि की नीरवता में या भोर के शान्त वातावरण में उस अटैची को खोलकर उन पत्रों को उलट-पुलटकर अक्सर पढ़ने लगता है—सिनेमा के रील की तरह चित्र उभरते-मिटते रहते हैं। हर तारीख के पत्र एक-एक दृश्य खड़ा कर देते हैं। किरण भी कभी उन पत्रों को पढ़ती या सुनती। फिर चुप हो उसके साथ-ही-साथ अपनी समवेदना व्यक्त करती।

आज अजीत एक-एक पत्र उठाकर पढ़ता है—पढ़ता ही जाता है—एक नहीं, अनेक—एक के बाद एक।

× × ×

"आपके दोनों पत्र मिले। इसके लिए ऋणी हूँ। आपकी याद में माला अब भी बरकरार है—यह मेरे लिए शुभ बात

है। क्षमा चाहती हूँ—शीघ्र उत्तर न दे सकी। आखिर देती भी कैसे? पतिदेव की सेवा पहले, सारी दुनिया पीछे। यही तो आप गुरुजनों की आज्ञा थी। मैं बहुत प्रसन्न हूँ—अति-प्रसन्न। पतिदेव भी खुश हैं—खुश ही हैं।.........परन्तु मैंने उन्हें धोखा नहीं दिया—चाहती भी नहीं हूँ कि उनको धोखा दूँ। धोखा देने से—भुलावे में रखने से क्या फ़ायदा? फिर यह मेरे स्वभाव के विरुद्ध था। मैंने प्रणय-रात्रि को ही उनसे माफ़ी माँग ली। यदि अपराध है तो अपराध ही सही—मगर माला के जीवन का सत्य यही है। मैंने कोई मन की बात छिपाई नहीं। दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँक कर पीता है। मैं भुक्तभोगी हूँ, इसलिए दुबारा ग़लती करना मुझे पसन्द न था। परन्तु हाय राम! पतिदेव पहली ही रात डोल गए। सुबह को जब मैं उठी तो उन्हें रातभर कुर्सी पर बैठे-बैठे तारे गिनते देखकर मुझे बड़ी ग्लानि हुई! मगर मैं करती तो क्या? उनका चेहरा ही बदरंग हो गया था। स्याह—काला। हाय! क्या क़िस्मत पाई है इन्होंने! पहली तो साल लगते-न-लगते चल बसी और दूसरी आई भी तो जिन्दा लाश! ....मगर पतिदेव के जीवट की मैं प्रशंसा करूँगी। वह जीवन में हार मानना नहीं जानते। किसी भी मूल्य पर वह जीवन का रस लेना चाहते हैं। शायद सोचते हों, यह आखिरी दाँव है। उन्होंने गरल

पी लिया है और मेरे जीवन को एक नए सिरे से प्रारम्भ करने का संकल्प ले लिया है। प्रयास बड़ा सुन्दर है। मैं भी चाहती हूँ उनको सहयोग देना। मैं नहीं चाहती कि उनका सपना टूट जाए। इसीलिए मैं अपना भी पार्ट बड़ी खूबी से अदा कर रही हूँ। आशीर्वाद दें कि मेरा अभिनय सफल हो। आपही तो नाटककार ठहरे। नाटक की सफलता कुशल अभिनय पर ही निर्भर करती है। देखना है, आपका नाटक सुन्दर ढंग से अभिनीत हो पाता है या नहीं। यदि दर्शकों के बीच से तालियों की गड़गड़ाहट न सुनाई पड़ी तो समझिए कमी आपकी है, कुछ मेरी नहीं।

आपका पहला पत्र जबतक न मिला था मैं उन्मादिनी-सी हो गई थी—जी को इतना समझाती कि आखिर किधर उलझ जाता है तू! पतिदेव 'नेग्लेक्ट' हो रहे हैं। मगर वह तो जैसे मेरे काबू में ही न था। क्या करती? पकड़ा ही गई। आपका पहला पत्र पतिदेव ने मुझे हँसते-हँसते दिया और दूसरा जरा सहमते-सहमते। मैं हँसने लगी, इसमें सहमने की कौन-सी बात है!"

× × ×

"आपके दोनों पत्रों का उत्तर मैं दे चुकी हूँ, मगर आपका कोई भी पत्र नहीं आया। आप जानते हैं, मैं आपके पत्रों के

ही सहारे इस संकट को पार कर रही हूँ; मगर आपको मुझपर तनिक भी दया नहीं आती। महीने में एक पत्र भी भेज देते तो एक दिलासा होता, मगर आपसे वह भी न हो पाता। कैसी जिन्दगी आपने बना रखी है मेरी! हँसी भी आती है और रोना भी आता है।

मैं पतिदेव के साथ इवर दौरे पर गई थी। छः दिन कैम्प में रहना पड़ा। कई दूसरे अफसरों की बीवियाँ भी साथ-साथ कैम्प कर रही थीं। जी कुछ बहला तो जरूर, मगर उस शान्त-सौम्य वातावरण में भी वह रम न पाया। इलाहाबाद से जब-जब चपरासी डाक ले आता, तो पतिदेव चिट्ठियों का अम्बार पहले मेरे ही पास भेज देते—जैसे मेरे मन की सारी बात वे जान रहे हों—मगर आपका पत्र न देखकर मैं अपना 'मूड' ही बिगाड़ लेती।...अब मेरे 'मूड' पर अपनी 'सरकिल' में काफी टीका-टिप्पणी होने लगी है। पतिदेव भी परेशान रहते हैं—उनकी परेशानी तो मैं ही ठीक-ठीक समझ पाती हूँ।"

× × ×

"आपका कोई पत्र नहीं आया। ऐसी नाराजगी क्यों? जो आँखों से ओझल हो जाता है, वह शायद दिल से भी ओझल हो जाता है। परन्तु आपसे ऐसी उम्मीद न थी।

जैसे-जैसे पतिदेव मुझसे दूर होते जाते हैं, वैसे-ही-वैसे शायद आप भी दूर हो रहे हैं। यह कैसी लीला ! भगवान के लिए अब भी तो लीला समेटिए। अपनी क्या कहूँ ? जान पड़ता है, पतिदेव के सब्र का बाँध टूट रहा है। अक्सर बोल देते हैं—'पत्र आना क्यों बन्द हो गया ? क्या लिख दिया आपने ?' मैं चुप। . फिर ताना—'पत्र आते रहते थे तो मुझे शान्ति रहती थी—आपका मूड ठीक रहता था। अब तो आप बराबर मूड बिगाड़े रहती हैं।' मैं फिर भी चुप रहती हूँ। मेरे पास उनसे कहने को रह ही क्या गया है ? सब पहले ही बता चुकी हूँ।·········अब मेरी ओर से उनकी आसक्ति भी घटती जा रही है। अक्सर सिनेमा अकेले ही चले जाते हैं—किसी मित्र से भी मिलने मुझे छोड़कर ही भाग जाते हैं। दौरे पर तो मेरा जाना अब बन्द ही हो गया है। अन्य अफसरों की बीवियाँ यदि कुछ पूछती भी हैं तो झट जवाब दे देते हैं—'उसकी गृहस्थी बहुत बढ़ गई—अब वह बार-बार घर छोड़कर बाहर नहीं जा पाती। फिर उसका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता।' कभी-कभी मिसेज भल्ला जिद पकड़ लेतीं हैं तो कहते हैं—'उसकी माँ का बुलावा आया है। उसे मैके जाना है।'

अब वह खाने की मेज पर मेरा इन्तजार नहीं करते। मेरे आते-आते खाना खाकर उठ जाते हैं। कभी-कभी मैं साथ भी

देती हूँ, तो वह चुपचाप खाते रहते हैं—कोई बात मुश्किल से होती है। कभी-कभी दिन का खाना ऑफिस में ही मँगाकर खा लेते हैं। जब मैं पूछती हूँ कि घर क्यों नहीं आए तो वही चिर-परिचित उत्तर मिलता है—'काम बहुत बढ़ गया है।'

मैं इस जीवन से ऊब-सी गई हूँ, इसलिए कुछ दिनों के लिए बनारस जा रही हूँ। क्या वहाँ आपके दर्शन होंगे?

दर्शनाभिलाषिनी

माला"

× × ×

"मैं बनारस गई थी और काफी दिनों तक वहाँ रहकर चली भी आई, मगर आपके दर्शन नहीं हुए। इधर जब-जब मैं बनारस गई तो यह उम्मीद बाँधे रहती थी कि आपके दर्शन अवश्य होंगे, मगर सदा निराश ही होना पड़ा। आपकी ऐसी मति हो जाएगी, इसकी मुझे स्वप्न में भी उम्मीद न थी। यही भाग्य है मेरा। जिसके लिए लोक-लाज खोई, वही पराया बन गया। इस बार तो पतिदेव ने पूछ भी दिया—'क्या इस बार भी भेंट न हुई?' मैंने कहा, 'नहीं।'

'आश्चर्य है!' कहकर वह चुप हो गए। परन्तु अब तो उनका व्यवहार बहुत कटा-कटा-सा रहता है। सुबह नाश्ता करके निकलते हैं तो बहुत रात गए लौटते हैं। दिन का खाना

ऑफिस में ही जाता है, मगर कभी खाते हैं, कभी नहीं भी खाते। रात में तो बाहर ही कहीं खा लेते हैं। उनके साथ मेरा कहीं भी आना-जाना अब बन्द-सा ही हो गया है। मुझसे भी बहुत कम बातें करते हैं। मैं ही उनकी गोद में सरिता को खेलाती-खेलाती रख देती हूँ, तो कुछ देर को उनके चेहरे का रंग बदल जाता है। परन्तु फिर वही रुआँसा चेहरा। पन्ना तो परीशान रहती है। कहती है—'मालकिन की गोद भी भरी, मगर साहब का मिजाज न सुधरा। जाने क्या इनको हो गया! नित-प्रति मन और शरीर से गिरते ही जाते हैं। जैसे घुन लग गया हो।' मैं भी उनके स्वास्थ्य का यह हाल देखकर बहुत चिन्तित रहती हूँ। मगर करूँ तो क्या करूँ? अपनी तरफ़ से तो कुछ उठा नहीं रखती। एक पैर पर उनकी सेवा करने को तत्पर रहती हूँ। मगर मेरे किए कुछ होता-जाता नहीं।

सरिता आपको नमस्ते भेजती है।"

× × ×

"आपने तो शायद कसम खा ली है कि मुझे पत्र न लिखेंगे। और एक मैं हूँ कि आपको पत्र लिखते-लिखते परीशान किए रहती हूँ। आखिर आप मेरे पत्रों को पढ़ते भी हैं या नहीं—राम जाने! है इतना भी अनुराग मुझपर?

सब भगवान्-भरोसे ही किए जा रही हूँ। पता नहीं, मेरे पत्र आपको मिलते भी हैं या नहीं। इस बार बनारस गई थी तो मुझे खबर मिली थी कि आप अभी भी फैक्टरी में ही हैं।... यहाँ एक घटना घट गई है। पतिदेव एक दिन बिना सूचना दिए ही दौरे पर चले गए। मैं रातभर जागी रही—एक पैर फाटक पर रहता और दूसरा बुखार में डूबी हुई सरिता के पलंग पर। जब भोर हो गया और नहीं लौटे तो मैं समझ गई कि वह कहीं मोटर के नीचे आ गए और अब पुलिस मुझे खबर करेगी।......फिर उनके ऑफिस का किरानी आया और कह गया, साहब कल दोपहर में ही दौरे पर चले गए। हाय राम! न एक कपड़ा, न बिछावन, न शेव करने का सामान—कुछ भी साथ न ले गए। कैसे होंगे वह! अपना इतना भी ख्याल नहीं करते और मेरे लिए सब कुछ करने को तैयार रहते हैं। उफ़, मुझे बड़ी ग्लानि हुई। जी में आया, इसी ग्लानि में आत्महत्या कर लूँ—इस तरह जीने से फ़ायदा? मगर सामने पड़ी सरिता टुकुर-टुकुर देख रही थी। ममता की जीवित शिखा! शिवमंगल से मैंने इनका सारा सामान दौरे पर भेज दिया और दिनभर रोती रही—तड़पती रही। दूसरे दिन शिवमंगल आया तो दूसरी ही खबर लाया। बहुत आँधी-पानी आया और कैम्प मध्यरात्रि के उपरान्त पानी से सराबोर हो जमीन पर

आ गया । गिरने के कुछ ही क्षण पहले वे बाहर निकल गए थे, वर्ना आज उनकी क्या गति हुई रहती ! भींगते-भागते एक पड़ोस के मकान में शरण ली । रातभर काफी भींगते रहे—सर्दी लग गई है और काफी बुखार चढ़ आया है । शिवमंगल जब चल रहा था तो वह बुखार की गर्मी से तड़प रहे थे ।

वह नहीं आने को तैयार था, मगर पतिदेव ने ज़िद पकड़ ली—'मेमसाहब अकेली-अकेली घबड़ा रही होंगी, तुम तुरत लौट जाओ ।' बेचारा क्या करता ? उलटे पाँव लौट आया । अब उनकी बीमारी का हाल सुनकर भला मैं यहाँ कैसे रह सकूँगी ? जी घबड़ा रहा है । सरिता का बुखार उतर आया है । उसे पन्ना के साथ यहाँ छोड़कर डाक्टर को साथ लेकर दौरे पर जा रही हूँ । देखिए, क्या होना है !……"

× × ×

"मेरी परीशानियों से भी आप नहीं पसीजे, यह भी आश्चर्य ही है । आज भी आपकी कोई चिट्ठी नहीं आई ।… मैं पतिदेव को लेकर 'एम्बुलेन्स' से इलाहाबाद लौट आई । उनकी हालत अति-शोचनीय है । डाक्टर बता रहे हैं कि उनको 'प्लुरिसी' हो गई है । टी० बी० का पहला स्टेज ।

फेफड़े में पानी आ गया है। उसे ट्यूब से निकाला जा रहा है। बुखार भी रहता है।

वे अस्पताल में पड़े हैं। दो-दो नर्सें भी हैं। परन्तु मैं रात-दिन अस्पताल में ही रहती हूँ। सरिता को भी एक कोने में सुलाए रहती हूँ। अस्पताल में आकर पता चलता है कि संसार कितना असार है। तरह-तरह के रोगी, तरह-तरह के रोग। कोई जीवन पाकर लौट रहा है, तो कोई जीवन खोकर लौट रहा है। संसार का एक 'क्रॉसरोड'। देखिए, हमारे हाथ क्या आता है! डॉक्टर कहता है कि उचित उपचार से जान बच जाएगी। इसी विश्वास पर मैं रात-दिन एक किए हूँ। बनारस से जीजी और भैया भी आए हैं। माँ भी आई थीं। बड़ी रो रही थीं। दीदी और जीजाजी भी आए थे। अपने जनों में बस आप ही नहीं आए। पैसे की इस समय कोई क़ीमत नहीं। हमारे पास जो कुछ पूँजी थी, सब इनने दाँव पर रख दी है। देवी-देवता, पित्तर-पाठ में भी कोई कमी नहीं होती। विन्ध्याचल में भी पाठ बैठवा दिया है। एक पण्डित उनकी बगल में भी बैठकर पाठ करते हैं। मैं भी कोई व्रत-नेम छोड़ नहीं रही हूँ। सभी किए जा रही हूँ। एक आस—एक विश्वास के साथ। अब मैं रात-रात भर जागने की अभ्यस्त हो गई हूँ। दिन-दिन भर, रात-रात भर बिना खाए रह

जाती हूँ। कोई कठिन व्रत मेरे लिए कठिन न रहा। सभी सध गए हैं।······एक दिन रात्रि में पतिदेव को नींद नहीं आ रही थी। एक पोज में पड़े-पड़े ऊब-से गए थे। उनका सर अपनी गोद में लेकर रात भर उनका माथा सहलाती रही। कभी-कभी वे कहने लगते—'माला! तुमसे मुझको सब कुछ मिल गया—प्यार, सेवा, स्नेह, प्रेम······यानी सब कुछ। अब कितनी रात तक जागोगी? सो जाओ।' मैं चुप रही, तो उन्होंने फिर कहा—'परन्तु इतना सब कुछ होने के बाद भी शायद मुझे कुछ न मिला—ऐसा मुझे एहसास होने लगता है—कभी-कभी—सब छूछा-छूछा, रीता-रीता-सा लगता है। ऐसा क्यों? जाने क्यों? समझ में नहीं आता।' मैं चुप थी। मेरी आँखें उस समय गीली थीं।"

× × ×

"अब मैं इस विश्वास पर लिख रही हूँ कि मुझे कभी भी आपका कोई पत्र नहीं मिलेगा। मेरे पत्रों को आप पढ़ते भी हैं या नहीं—राम जाने! हमलोग नैनीताल चले आए हैं। अस्पताल से पतिदेव एकदम अच्छे होकर निकल आए थे। ऑफिस भी जाने लगे थे। मगर कुछ दिनों बाद उन्हें सन्ध्या समय बुखार आ जाता। बुखार का प्रतिदिन आना फिर चिन्ताजनक बात हो गई। डाक्टरों की राय हुई कि 'चेंज'

के लिए इन्हें पहाड़ ले जाया जाय। मि० भल्ला ने मुझपर बड़ी कृपा की। अपना पूरा बंगला हमारे हवाले कर दिया। यहाँ आने के कुछ दिनों के बाद बुखार आना बन्द हो गया और वजन भी बढ़ा। अब तो कुछ दूर तक टहल भी लेते हैं। एक दिन झील में नौका-विहार के लिए भी हम गए थे। बड़ा मजा आया। नयनादेवी के मन्दिर में मैं प्रतिदिन जाती हूँ और इनके स्वास्थ्य के लिए मिन्नतें मानती हूँ। वहीं से पतिदेव हमलोगों को जबर्दस्ती पकड़कर 'कैपिटल' सिनेमा ले जाते हैं। कई-एक अच्छे-अच्छे दोस्त यहाँ बन गए हैं। कभी-कभी उनका भी निमन्त्रण रहता है। हर एतवार को पिकनिक होती है। कभी 'चायना-पिक' की ओर भी बढ़ जाते हैं। बड़ी ऊँची चढ़ाई है। सर्दी अभी यहाँ बिल्कुल नहीं है। लोग कहते हैं, दिवाली बाद रहना मुश्किल हो जाता है। हाँ, बारिश कभी-कभी हो जाती है।

सरिता अब कुछ बड़ी हो गई है। उसका फोटो तो आपको मिला होगा। खूब बातूनी है। एक आदमी उससे बातें करने को उसके साथ बराबर रहे। यहाँ एक अच्छी आया मिल गई है। वही उसकी देखभाल करती है। मुझे तो इनके ही कामों से फुर्सत नहीं मिलती। इनके भैया भी साथ आए हैं। पन्द्रह दिनों बाद घर लौट जाएँगे तो जीजी आएँगी। अभी

हमारे प्रोग्राम का कुछ भी ठीक नहीं। सब इनके स्वास्थ्य और डॉक्टर की राय पर निर्भर है। किरण बहन को मेरी याद दिला देंगे। सरिता आप सबको नमस्ते कहती है।"

× × ×

"मेरी अन्तिम कहानी। कुछ अर्से बाद लिख रही हूँ। शायद आपको भी आश्चर्य हो। एक दिन हमलोग पिकनिक को गए थे। दिन भर खूब घुमाई हुई और सन्ध्या बाद घर लौटे। घर आने पर पतिदेव का टेम्परेचर लिया तो १००°। अरे, यह क्या! पहाड़ आने पर यह पहली बार। जी बहुत घबड़ा उठा। वे हँसते रहे। कहा, 'क्यों परेशान होती हो? शरीर ही तो है—कभी सर्दी, कभी गर्मी।' मुझे इतमीनान न हुआ। एक दिन और इन्तज़ार किया। जब बुखार न उतरा तो डॉक्टर को बुलवाया। डॉक्टर ने पूरी परीक्षा की, मगर बुखार के कारण का उसे कुछ पता न चला। कहा—'आराम कीजिए। दवा देता हूँ।' कुछ दिन यों ही गुजर गए मगर जब कोई फ़ायदा न हुआ तो और डॉक्टरों की राय ली। सबों ने एक मत से कहा कि इन्हें भुवाली सैनेटोरियम ले जाइए। पिछला इतिहास इनका ऐसा है कि कभी-कभी शुबहा हो जाता है। मेरा तो माथा ठनका - दिल दहल गया। मगर उन्होंने तसल्ली दिलाई—'चलो, वहाँ भी किस्मत आजमा लें।

घबड़ाती क्यों हो ? सब ठीक हो जाएगा।'

हम सैनेटोरियम में चले आए और परीक्षा के बाद सभी डॉक्टर इसी नतीजे पर पहुँचे कि पतिदेव टी॰ बी॰ के मरीज़ हैं। बच्चों को तुरत इनके पास से हटा दिया गया। बाहर एक मकान में जीजी उन्हें लेकर रहने लगीं। यहाँ आने के उपरान्त उनकी हालत दिनों-दिन गिरती ही गई। इतना अच्छा स्वास्थ्य जो नैनीताल में बन आया था वह बर्बाद हो गया और वे पलंग पर शक्तिहीन हो पड़ गए। आँखों में कोई तेज नहीं—शरीर में कोई मांस नहीं। यह हालत देखकर मैं तो सिल हो गई। मगर वे अभी भी हँसते रहते। कहते—'घबड़ाती क्यों हो ? अन्धकार के बाद ही लाली आती है। ये दिन भी एक दिन कट जाएँगे।' मेरे आँसू कभी-कभी खुद पोंछ देते। मैंने उनकी सेवा में, उपचार में कोई भी कमी नहीं आने दी। मगर विधि का विधान ! एक दिन हालत बहुत बिगड़ गई और फिर प्रतिदिन बिगड़ती ही गई। फिर ऑक्सीजन पर रखे जाने लगे ······आँखें और भी निस्तेज हो गईं······

और वह महारात्रि ! अगल-बगल के कमरे में, वार्ड में विराट् शून्यता। सभी मरीज़ जीवन के अन्तिम क्षण गिन रहे हैं। मैं उनके सिर को गोद में लिए बैठी हूँ ! वे कहने

लगे—आवाज़ में बड़ी क्षीणता थी—कभी-कभी टूट भी जाती—'माला ! मुझे जीवन में सब कुछ मिल गया। अब मुझे वह रीतापन महसूस नहीं होता। मैं भरा-भरा-सा महसूस करने लगा हूँ।……जीवन की साध जब पूरी हुई तो जीवन-सन्ध्या आ गई। यह भी कैसी लीला ! मैं पल्लव और सरिता को तुम्हारे और अजीत बाबू के भरोसे छोड़े जा रहा हूँ।'… …मैं सुबक-सुबक कर उनके गालों में अपने गालों को सटा-सटा कर रोने लगी। खूब रोई। मगर जब रोकर उठी…… तबतक वह जा चुके थे।……

तो पल्लव और सरिता की मुझे माँ बनाकर वह चल बसे।…… ”

× × ×

'माँ, माँ ! बाबू जाने कैसा कर रहे हैं। दौड़ो-दौड़ो…।' अमिताभ ने जोरों का शोर मचाया।

अजीत के हाथों से चाय की प्याली गिरकर चूर हो गई है और वह पलंग पर छटपटा रहा है—बिल्कुल पागलों की तरह। सभी पत्र इधर-उधर बिखर गए हैं।

……कि किरण दौड़ी चली आई और बोली—'आप क्यों परेशान हो रहे हैं ? अब इसमें क्या होने-जाने को है ? जाइए—अभी जाइए; बल्कि मुझे भी लेते चलिए, माला से

मिल आएँ, कुछ दिलासा दें, उसे लेते भी आएँ—कुछ दिन यहाँ रहने से उसका भी जी बहल जाएगा।'

अजीत ने किरण को कोई उत्तर न दिया। किरण ने सभी पत्रों को चुनकर अटैची के हवाले कर दिया, फिर टूटी हुई प्याली के चूर चुनकर बाहर फेंक आई।

उसने लाख समझाया-बुझाया पर अजीत का दिल सम्हाल में न आया। न किसी से मिलना-जुलना, न किसी से बात-चीत। पलंग पर पड़े-पड़े मर्माहत स्वर में कराहता रहता, लम्बी सर्द आहें खींचता और आँखों में आँसू की झड़ी लग जाती। चेहरा ऐसा हो गया कि पहचान में नहीं आता। बाल बिखरे हैं—कितने दिनों से तेल-कंघी से कोई सम्पर्क नहीं। दाढ़ी बेतरह बढ़ आई है, आँखें सूज गई हैं।

❖

अरुणाचन्द्र की मृत्यु ने माला को झकझोर कर रख दिया। वह सन्न है—चकित! जीवन ऐसा भयंकर करवट ले लेगा और वह भी इतना शीघ्र—इसका उसे कभी एहसास भी न हुआ था। कुछ ही सालों ने जीवन के पूरे साल पूरे कर दिए। जीवन के कितने पहलू आए और चले गए और माला किनारे खड़ी-खड़ी सागर की उस लहर का इन्तजार कर रही है जो जीवन की तमाम लहरों को हिलोर कर, लिए चली जाए। हृदय में एक अजीब रीतापन—मन में तीखा सूनापन। गोद तो भरी है अवश्य परन्तु मन!—वह कहाँ भरा?

अरुणचन्द्र की अन्तिम क्रिया के बाद बनारस की ऊँची हवेली काटने लगी उसे। माँ और दीदी के यहाँ रहकर कुछ दिन समय बिताने को उसकी इच्छा न होती। कभी-कभी वहाँ जाती, मगर माँ के आँसू देखकर और भी घबड़ा उठती। दीदी

और जीजाजी का अपना जीवन—ऐश्वर्य और महलों का। वहाँ तक उसकी पहुँच कहाँ?

एक दिन उसने अपने पुराने स्कूल की अध्यापिका श्रीमती शरण को लखनऊ पत्र भेजा। अपने जीवन की विराट् शून्यता से उन्हें अवगत कराया और उनसे सहायता की भीख माँगी। श्रीमती शरण बनारस से अवकाश प्राप्त कर लखनऊ में एक बालिका-विद्यालय की प्रधानाध्यापिका हैं। अपनी छात्रा की यह दशा देखकर उनका दिल पिघल गया। स्कूल के मन्त्री श्री नवल प्रभाकर से उन्होंने राय की और माला को अपने स्कूल में रखने का सारा काम सिद्ध कर लिया।

माला को जिस दिन नियुक्ति का पत्र मिला उस दिन उसके मुरझाए हुए चेहरे पर एक आशा की किरण फूट पड़ी। जीजी और उसके पति को भी यह काम पसन्द आया। अकेली पड़ी रहने से कुछ करना कहीं अच्छा। जिन्दगी एक लीक पर चलने लगेगी और मन भी बहलेगा।

उधर अजीत को जब माला का पत्र लखनऊ स्कूल से मिला तो उसका जर्रा-जर्रा काँप गया—माला और नौकरी! कहाँ आज वह बहू रहती और कहाँ स्कूल की नौकरी कर ली! वैधव्य और यौवन···फिर दो-दो बच्चों की माँ! कहाँ रहेगी, कैसे रहेगी? किस तरह यह जिन्दगी कटेगी? इतनी छोटी

उसने एक ताँगा ठीक किया और निकल पड़ा यों ही—निरुद्देश्य।

'किधर चलूँ साहब ?

'जिधर मन हो।'

'मेरा मन या...'

'एक ही बात है।'

'आखिर...... ?'

'तो ले चलो हजरतगंज। वहीं कुछ इधर-उधर....।'

हजरतगंज इस समय अपनी जवानी के जोश में भरपूर है। हर कोने में चहल-पहल, हर दुकान—हर रेस्तराँ में भीड़-भाड़।

'कहिए साहब, ताँगा रोका करूँ?—सामने कार्निवी है......।'

'नहीं भाई, कॉफी-हाउस चलो। वहीं कुछ देर समय बिताएँ।'

अर्जीत कॉफी हाउस में चीज के साथ-साथ कॉफी पीने लगा। दो प्याली पी गया। फिर बिल देता उठा और बोला—'ताँगावाले, डालीगंज चलो।'

'चलिए।'

उसने ताँगा हाँक दिया। घोड़ा तगड़ा था, झट हवा में उड़ चला।

'.......................'

'देखो, ताँगा धीरे-धीरे हाँको। नम्बर ढूँढ़ना होगा।'

'तो इसी नुक्कड़ पर रोकता हूँ। आप नम्बर खोज आइए।'

अजीत सड़क की रोशनी में मकानों का नम्बर खोज रहा है। कभी-कभी किसी मकान के अन्दर जाकर पूछ बैठता है। खोजते-खोजते एक मकान के दरवाजे पर ठिठककर खड़ा हो जाता है—ओह! यह तो वही चिरपरिचित आवाज़....रात की अँधियारी में थिरक रही है—'ना मैं जानूँ आरती-वन्दन ना पूजा की रीति.......' हाँ-हाँ, यह तो माला है—माला!

वह चिल्लाना चाहता है—माला! माला!!—मगर चुप है—सुध-बुध खो सुने जा रहा है उसके गीत की एक-एक कड़ी—'ए री मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जाने कोय।'

उसकी आवाज़ में एक पीड़ा है—एक दर्द, एक वेदना। जीवन के आघात ने उसके दर्द को जगा दिया है—उसके मर्म को छू लिया है। माला की आवाज़ में कभी इतना दर्द न पाया था। ओह! क्या यह माला है? उफ़,.......

मासूम बच्ची ! मैंने तुम्हारा गला घोंट दिया—मेरे दामन पर तुम्हारी खुदकुशी के छींटे पड़े हैं।—वह तड़प उठा। अन्दर न जाकर बढ़ा ताँगे की ओर।

'क्या साहब, घर न मिला ?'

'मिला। मगर सभी दरवाजे बन्द हैं—शायद लोग बाहर हवाखोरी को निकले हैं। चलो, स्टेशन चलो। कल फिर आऊँगा।'

दूसरे दिन जाने क्यों अजीत ने चटपट यह निश्चय किया कि माला से स्कूल में ही 'स्टाफ-रूम' में भेंट की जाय। ग्यारह बजे के करीब तैयार होकर वह 'वेटिंग-रूम' से झट निकला और ताँगे पर सवार हो बालिका-विद्यालय की ओर चल पड़ा। मन में एक अशान्ति, एक उथल-पुथल का द्वंद्व बँधा रहा। बराबर यह द्वन्द्व छिड़ा रहा कि स्कूल में मिलना उचित है या नहीं। इसी उधेड़-बुन में बालिका-विद्यालय आ गया।

वह ताँगे से उतर पड़ा। देखा, स्कूल की सभी छात्राएँ अपने-अपने क्लास में हैं। बाहर चिड़िए का पूत भी नहीं। चपरासी ने फाटक पर ही पूछा—'बाबू, किनसे मिलना है ?'

'स्टाफ-रूम' में जाना है—वहाँ मुझे एक अध्यापिका से मिलना है।'

'जाइए, शायद उनकी घण्टी खाली हो तो भेंट हो जाय…'

अजीत स्टाफ-रूम की ओर बढ़ा। ऐं, यह तो सुनसान सन्नाटा है! कहीं किसी का पता नहीं।

कि पर्दे की ओट से देखा—माला ही वहाँ अकेली बैठी है। कुछ लिख रही है। सूखकर काँटे-जैसी हो गई है। माँग सूनी, चेहरा सफेद, आँखें धँसी हुईं। अजीत एक क्षण पर्दे के पास खड़ा रहा, उसे निहारता रहा—हाय! चन्द सालों में ही यह क्या से क्या हो गई बेचारी! कहाँ फूल-सा खिला चेहरा—हँसमुख, प्रफुल्ल—और कहाँ म्लान नेत्र, मुरझाई हुई सूरत। देखने से पीड़ा होती।

वह धीरे-धीरे अन्दर घुसा। माला की दृष्टि उस पर पड़ी। देखती रही वह—कुछ क्षण देखती ही रही। फिर दौड़-सी पड़ी—'ओ···ओह—आप···अजीत बाबू!'—वह उसके पैरों पर गिर पड़ी।

···कि अजीत ने उसे उठा लिया। वह काँप रही है—शक्तिविहीन। अजीत ने उसे पकड़कर एक सहारे से कुर्सी पर विठाया। दोनों की आँखें भरी हैं।

कुछ क्षण बाद संयत हो वह बोली—'आपकी यह दशा! अजीत बाबू, आप तो बिल्कुल पहचान में ही नहीं आते। यह लम्बी दाढ़ी, ये अस्त-व्यस्त बाल—आखिर क्या सूरत बना रखी है आपने?'

'जैसे तुम्हारी ही सूरत पहचान में आ जाती है !'

'मेरी सूरत की क्या बात ? जी रही हूँ—बहुत है, बस—

बेकैफ जिन्दगी है, जिए जा रही हूँ।
शीशः खाली है, पिए जा रही हूँ।

—मुकद्दर तो दुख का पहाड़ ही फट पड़ा, फिर ऐसी न होती तो कैसी होती ?···खैर, छोड़िए मेरा पचड़ा—कहिए, किरण बहन कैसी हैं ?'

'सभी अच्छे हैं—किरण और अमिताभ दोनों, मगर तुम्हारी ही हालत सुनकर सभी बेहाल हो रहे हैं। तुम्हें चलना होगा—किरण ने बुलाया है।'

'किरण बहन ने बुलाया है ? क्या सच ?···सच !'—वह चकित है।

'हाँ-हाँ, सच।'

'तो जरूर चलूँगी—जरूर····।' फिर वह गम्भीर हो गई।

'क्यों, क्या सोचने लगी ?'

'यही कि अभी तो मुझे छुट्टी मिलेगी नहीं। नई-नई नौकरी—मगर किसी छुट्टी में जरूर चलूँगी।····हाँ, जरा यह तो बताइए, कैसा है अमिताभ ? बिल्कुल पिता जैसा होगा ! उसे देखने को आँखें तरस रही हैं। ओह, उसके विषय में तो आपने कुछ लिखा ही नहीं।·······'

उसका चेहरा फिर रुआँसा हो गया। एक क्षण रुक कर फिर बोली—'अजीत बाबू! इस अर्से में आपने किसी के विषय में कुछ भी न लिखा। मैं तड़प-तड़प कर रह गई, परन्तु आपकी एक पंक्ति भी न मिली मुझे। इतने निष्ठुर निकलेंगे आप—इसकी तो मुझे कल्पना भी नहीं थी। मगर, जब दैव रूठता है तो सभी रूठ जाते हैं। अब तो मैं हार मान बैठी थी। आपसे कभी भेंट होगी—ऐसी आशा भी छोड़ चुकी थी। मगर, आज यह बिनमाँगा वरदान! बड़ी कृपा हुई आपकी मुझपर। लाख-लाख धन्यवाद आपको।'

'तुम भी कैसी बातें करती हो माला?'

'मैं सही कहती हूँ अजीत बाबू! मैं सारी सम्भावना—सारी आशा खो चुकी थी। यह तो आपकी महत्ता है और किरण बहन की महानता कि····।'

'मुझे ज्यादा लज्जित न करो माला! माफ़ कर दो। मैं तो समझता था कि तुम्हारी नई दुनिया बन रही है—बनी की बनी रहे वह। मगर, हाय···!'—वह हठात् चुप हो गया।

माला हँस पड़ी—हँसती रही। फिर एकाएक उसकी आँखें भर आईं—लबालब। आँसू को रूमाल से पोंछते हुए बोली—'अजीत बाबू! जिस दुनिया की आपने रचना की वह सचमुच धोखे की टट्टी निकलेगी—इसका मुझे भी एहसास न

था।···खैर,—अब उसकी चर्चा क्या!—जीवन का एक-दर्दनाक—खौफनाक अध्याय!'

वह गम्भीर हो गई। कुछ क्षण को सन्नाटा छा गया तो अजीत ने कहा—'पल्लव और सरिता कहाँ हैं?—'

'सभी साथ ही हैं। भगवान ने मिसेज शरण को मेरे लिए मसीहा बनाकर भेज दिया—नहीं तो मैं मिट चुकी थी, बर्बाद हो गई थी। अब तो एक आस मिसेज शरण की है और दूसरी आपकी!···अब तो आप मुझे न सताएँगे!'—इतना कह वह फूट-फूट कर रो पड़ी। आँखों से नीर झर-झर बहने लगे। कुछ क्षण रोती रही। अजीत को ऐसा लगा कि उसने किसी की हत्या की हो। वह चुप हुई तो अजीत ने रुद्ध कंठ से कहा—'हिम्मत न हारो माला! दो-दो बच्चों को पालना है।···मैं तो तुमसे क्षमा···· '

'····· ··············· '

कि घंटी बज उठी। माला क्लास-रूम जाने के लिए अपने को तैयार करने लगी। अजीत भी चलने को हुआ तो माला ने कहा—'शाम को मिसेज शरण के यहाँ आइए। मिसेज शरण आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न होंगी।'

× × ×

सन्ध्या समय जब अजीत मिसेज शरण के घर पहुँचा

तो देखा, माला लॉन में बैठी पल्लव और सरिता को खेला रही है। अजीत को देखकर उसके चेहरे पर खुशी नाच गई और उसने हँसते ही हँसते कहा—'कहिए, मकान ढूँढ़ने में दिक्कत तो न हुई··· ?'

'नहीं, कल मैं यहाँ का एक बार चक्कर लगा चुका था। इसलिए आज कुछ दिक्कत न हुई।···वाह, तो ये हैं सरिता—आपकी मूर्त्ति, और ये हैं मास्टर पल्लव—अरुणचन्द्रजी के नमूने ! ठीक वही नाक-नक्शा। ले बेटे, ले—ले बेटी, ले।' उसने दोनों को टॉफी का एक-एक डिब्बा थमाया और कुछ खिलौने भी।

'वाह ! इसकी क्या आवश्यकता थी !'—माला ने कहा।

'तुम जानती नहीं, बच्चों से दोस्ती खिलौने और मिठाइयों से ही की जाती है !'

उधर दोनों बच्चे अचम्भे में पड़ गए इस आगन्तुक को देखकर।

'आओ बेटे, मेरे पास—गोद में आओ। तुम्हें और भी खिलौने दूँगा। आ जा, आ जा, ओ-ओ······बड़ा राजा बेटा है !'—पुचकारते हुए अजीत ने पल्लव को गोद में उठा लिया।

'जाओ बेटी, तुम भी गोद में बैठ रहो। ये तुम्हारे मौसा

जी न हूँ ! जाओ !' सरिता भी झिझकती-सकुचाती अपने नए मौसाजी की गोद में चली गई।'

कुछ देर तक अजीत दोनों बच्चों के साथ खेलता रहा। उनसे मेल-मुहब्बत बढ़ाता रहा और माला यह दृश्य देखती रही—हँसती रही।

जब खेल खत्म हुआ तो दाई दोनों बच्चों को दूध पिलाने के लिए अन्दर ले गई और माला-अजीत अकेले ही लॉन में बैठे रहे।

'तो मैं किरण को क्या जवाब दूँगा ? कब चलोगी हमारे घर ?'

'मैं तो अभी चली चलूँ, मगर नौकरी का बन्धन है। यहाँ की परिस्थिति सब समझकर आपको लिखूँगी, तो आप मुझे लेने आ जाएँगे ?'

'अवश्य।'

'अजीत बाबू ! मैं बहुत थक-सी गई हूँ। मेरी स्थिति उस वृक्ष की तरह है जो आँधी-तूफान के आघात से अपने डालों-पत्तों से बिछुड़ कर अकेला किसी मैदान में खड़ा हो। मुझे एक सहारा चाहिए—एक नीड़। इसकी जितनी जरूरत मैं आज महसूस करती हूँ उतनी कभी भी न की थी। मेरी यह आन्तरिक इच्छा रहती है कि मैं आपके चरणों पर लोट जाऊँ

और आप मेरे सर को सहलाते-सहलाते एक सहारा देते जाइए। फिर तो मैं इस भवसागर को पार कर जाऊँगी—चाहे कितना भी आँधी-पानी आए—कैसा भी मौसम रहे। आपका चरण ही मेरा नीड़ होगा और आपकी तथा किरण बहन की शुभकामना ही एकमात्र सहारा।…आप तो जानते ही हैं—जीवन में मुझे कभी भी, कहीं भी, प्रेम न मिला—प्यार न मिला। कहीं मिला भी तो वह आपके ही साये में और जब वह घनी छाँव उठ गई तो मैं विधवा हो गई—सचमुच विधवा। आप मेरे सुहाग को मुझे फिर लौटा देंगे ! उस घनी छाँव तले फिर मुझे ठौर देंगे ? आज मैं उसी की भीख माँगती हूँ, अजीत बाबू ! —उसी की। यदि वह साया मेरे सर से कभी न उठा रहता तो मैं विधवा न होती। मगर आप तो……।'

वह हठात् चुप हो गई। अजीत उसे आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा है।

'आप चुप क्यों हैं अजीत बाबू ? मैं किनारे पहुँच रही हूँ और आप खामोश हैं ?'

'खामोश नहीं हूँ माला ! तुम जो माँग रही हो वह तुम्हें बिना माँगे ही मिल चुका है। अब भी तुम्हें विश्वास नहीं होता ?……'

'मुझे आपसे ऐसी ही आशा थी अजीत बाबू—ऐसी ही ।' माला की आँखें भर आईं ।

'तुम रो रही हो माला ?'

'हाँ, ये खुशी के आँसू हैं । जाने कितने साल बाद... आज...ये...मेरी आँखों में फिर समा पाए हैं ।'

माला का हृदय भरा है । आँखें भी भरी हैं । अजीत का गला भी भर आया है । चाहकर भी वह कुछ कह नहीं पाता ।

.........कि ताँगे पर सवार मिसेज शरण पहुँच जाती हैं । माला संयत हो ताँगे की ओर बढ़कर उन्हें उतार लाती है और अजीत से परिचय कराती है—'ताईजी ! आप ही हैं अजीत बाबू । आपसे मिलने के लिए बहुत ही उत्सुक हैं ।'

'आप जैसी महान् महिला से मिलने के लिए कौन न उत्सुक होगा ? आपने माला को गाढ़े समय में सहायता दे जिस महानता का, जिस उदारता का परिचय दिया है, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी ।'

'बेटा ! यह तो मेरा कर्तव्य था । यदि ऐसे समय में अपनी छाया की सहायता न करती तो मैं अपने धर्म से च्युत हो जाती ।......'

कुछ क्षण को सभी चुप रहे ।

…'और मेरे लिए तो माला वरदान बनकर आई है। मैं भी अकेली रहती हूँ। एक ही पुत्र और वह भी शादी नहीं करता—सैनिक जीवन बिता रहा है। इतना बड़ा मकान, मगर रहनेवाला कोई नहीं। इसीलिए माला आज मेरे लिए सब-कुछ है—छात्रा, मित्र, संगिनी, गार्जियन—सब-कुछ। इसके बच्चे नानी-नानी कहते जब मेरे गले से लिपट जाते हैं तो मैं गद्‌गद् हो जाती हूँ।'—मिसेज शरण ने हँसते-हँसते उत्साह में भर कर कहा।

'आप उस जन्म में माला की माँ रही होंगी।'

'हो सकता है। मेरा भी कुछ ऐसा ही अनुमान है।'

कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। फिर अजीत जाने को खड़ा हो गया और बोला—'आज रात की गाड़ी से मुझे वापस चला जाना है। कल ऑफिस है। …तो अब आज्ञा दें। …प्रणाम।'

'खुश रहो बेटा, जियो।'—मिसेज शरण ने आशीर्वाद दिया।

माला अजीत को ताँगे तक पहुँचाने गई। जब अजीत ताँगे पर चढ़ गया तो माला ने कहा—'फिर कब आना होगा?'

'शीघ्र ही आऊँगा। घबड़ाओ मत। पत्र बराबर लिखते

रहना। देखो, शायद अगले इतवार को फिर आऊँ। फैक्टरी के काम से आना पड़े।'

जब तक ताँगा ओझल न हो गया, दोनों एक-दूसरे को देखते रहे और मिसेज शरण का चपरासी दोनों को देखता रहा—एक कौतूहल, एक शंका की दृष्टि से—ऐं! यह कौन है···कौन?

माला जब फाटक बन्द कर अन्दर आई तो उसने जरा मुस्कुराते हुए पूछा—'माला दीदी! बाबू तुम्हारे कौन हैं? आज सुबह स्कूल में भी मैंने इन्हें देखा था।'

'दातादीन! हमारे पुराने···जान-पहचान के हैं। हमलोगों के साथ बनारस में रहते थे।'

'अच्छा···।' वह चुप हो रहा। माला को उसकी सूरत अच्छी न लगी।

अजीत जब घर पहुँचा तो किरण ने पहला प्रश्न पूछा—'माला को नहीं लाए न? मैं जानती थी, आप झूठ बोल रहे थे—।'

'भई, नाराज न हो। वह इतनी जल्द कैसे आती? आखिर नौकरी कर रही है। छुट्टी मिले तब तो—अभी देर है।'

'कितनी देर है? कब आ पाएगी?'

'वह छुट्टी के लिए दरख्वास्त दे रही है। जैसे ही छुट्टी मिलेगी, वह मुझे खबर कर देगी; तब मैं उसे लेने जाऊँगा।'

किरण ने अजीत से माला का पूरा हाल सुना। अब वह प्रसन्न है क्योंकि अपने पति को प्रसन्न और शान्त पाती है। अपने काम में और अपने परिवार में उनका मन रम गया है।

समय के पर होते हैं। यों आया और यों भागा। न आते देर, न जाते देर। अजीत अक्सर लखनऊ आता, एक-दो दिन ठहरता, माला की खोज-खबर ले घर लौट जाता। माला इतने में ही सन्तुष्ट हो जाती। समझती, एक साया—एक वरदहस्त है उसके माथे पर। एक बार लता और राज बाबू भी आए थे। कार्लटन होटल में ठहरे थे। लखनऊ में तफ़रीह कर, माला से भेंट-मुलाकात कर लौट गए। उन्हीं दिनों इत्तफ़ाक ऐसा कि अजीत भी आ टपका लखनऊ में। मिसेज शरण के घर पर अजीत की दोनों से भेंट हो गई। जबतक अजीत वहाँ रहा, दोनों ने कुछ कहा-सुना नहीं; मगर अजीत के जाते ही लता ने तूफ़ान उठा दिया—'क्यों माला! तुम्हारे यहाँ यह फिर पहुँचने लगा?...नालायक! बदतमीज़'

(......................)

'तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है माला ! इसे यहाँ क्यों आने देती हो ?—मक्कार !'—राज बाबू ने दाँत पीस लिए ।

'अजीत बाबू ने मेरा क्या बिगाड़ा दीदी ? इनपर ख़्वाम-ख़ाह क्यों तुम दोनों नाराज़ हो रही हो ?'—माला ने बड़ी नम्रता और करुणा से कहा ।

'यदि अब तक कुछ न बिगाड़ा तो अब बिगाड़ देगा ।'

'दीदी ! मेरा तो सब कुछ बिगड़ चुका, मिट चुका । अब क्या बनना-बिगड़ना बाकी है ? मैं तो अब मुक्त हूँ । मेरा तो न अब कोई अपना है न कोई पराया । बस—'ज़िन्दगी एक फ़र्ज़ है, जिए जा रही हूँ ।'....

'ख़ैर, तुम जानो, तुम्हारा काम जाने । हमें क्या लेना-देना ! तुम नाबालिग नहीं कि तुम्हें सीख दूँ ।'

दोनों गुस्से में बुत हो उठे और चल दिए ।

मिसेज़ शरण दूसरे कमरे में बैठी-बैठी सारी बातें सुन रही थीं । दोनों के जाने के बाद कह बैठीं—'माला ! यौवन विधवा के लिए पाप है ! ओह, कुछ न पूछो; मैं ख़ुद भुक्तभोगी हूँ । जाने कितने किस्से मेरे जीवन के विषय में लोगों से सुन लो—जिनका मुझे स्वयं ज्ञान नहीं । मगर जैसे-जैसे उम्र ढलती गई, किस्से भी घटते गए । और तो और—इस मरदुए दातादीन को न देखो । जब अजीत बाबू लौट जाते हैं तो पूछ बैठता है—

'इनके का लागत हों। बार-बार आना कैसा तो लागत है। वरिज क्यों न देत हो मेम साहिबा ?' मैं क्या कहती ? उसे जरा भी मुँह नहीं लगाती—डाँट देती हूँ।'

माला उदास हो गई है—रुआँसा चेहरा--सूनी-सूनी आँखें।

'क्या बेसिर-पैर की सोचती हो ? जाओ, 'क्लास-नोट' तैयार करो—कल तुम्हें ऊँचे दर्जे में भी पढ़ाना होगा। चिन्ता न करो। बच्चों को तबतक मेरे पास भेज दो।'—मिसेज शरण का वात्सल्य बोल उठा।

बहुत चाहकर भी माला किरण से मिलने न जा सकी। श्री नवल प्रभाकर, मंत्री, बालिका-विद्यालय के पास उसके 'कनफरमेशन' का मामला पेश है और इसीलिए इस समय कहीं भी नहीं जाना चाहती।

एक दिन दातादीन ने आकर कहा—'मालाजी ! मंत्रीजी के यहाँ से बुलावा आया है। शाम के छः बजे आपको उनके घर पर जाना है। आपकी अर्जी के विषय में कुछ पूछ-ताछ करेंगे। अभी फोन आया था।'

सन्ध्या समय काले कोर की सफेद साड़ी पहने माला जब मंत्रीजी के घर पहुँची तो पता चला, नवलजी ऑफिस में बैठे फाइल देख रहे हैं।

माला कार्ड भेजवाकर ड्राइंग रूम में बैठ गई। वहीं दो-चार और भी मिलनेवाले बैठे थे। पहले उनका काम खतम कर उन्हें विदा करके नवलजी ड्राइंग रूम में ही आकर बैठ गए।

नवलजी शहर के नामी-गरामी वकील हैं। सुन्दर व्यक्तित्व, सुन्दर 'प्रैक्टिस'। उम्र यही चालीस के लगभग। गोरा-चिट्टा रंग—गुलाबी होंठ—गंजा सर। दोहरा बदन—ऊँचा क़द।

'माफ करेंगी, मैंने आज भी आपको बहुत इन्तज़ार कराया। आप जब भी आती हैं तो मैं इतना काम में फँसा रहता हूँ कि आपका काम जल्द खतम ही नहीं कर पाता।'

'नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।'

'क्या बताऊँ? काम से कभी फुर्सत ही नहीं मिलती कि किसी के साथ दो घड़ी बैठ सकूँ—बातें कर सकूँ। दो स्कूल, दो कॉलेज, दो मदरसों का भार; फिर दिनभर कचहरी में खटना और सुबह-शाम 'केस' के लिए तैयार होना—जान आफ़त में रहती है। आपसे कितनी बार चाहा कुछ जमकर बातें करूँ—स्कूल के विषय में जानकारी हासिल करूँ, मगर समय कहाँ! और, अपनी मुसीबतों की कहानी सुनाकर आपको मैं परीशान क्यों करूँ? आपका जीवन तो मुझसे कहीं ज्यादा दर्दनाक है।

मिसेज शरण ने आपकी पूरी कहानी मुझसे सुनाई थी और इसीलिए कमिटी में मैंने आपकी ओर से पूरी बहस की और आपकी बहाली करवाई। मुझे बड़ी खुशी है कि आपके रेकर्ड पिछले छः महीनों के बहुत सुन्दर हैं और अब कमिटी आपके 'कनफरमेशन' के सवाल पर राय-मशविरा करने जा रही है। भला आपका 'कनफरमेशन' क्यों न होगा?······और, फिर मैं जो हूँ। आप चिन्ता न करें।'—नवल प्रभाकर जी इतना कहकर चुप हो गए। सिगार निकाल कर जलाया और धुएँ का छल्ला उड़ाते हुए फिर बोले—'मालाजी! मेरी भी जिन्दगी कोई जिन्दगी है?—दिनभर खटना और रातभर जगना। जब से मेरी बीवी इस दुनिया से उठ गई, घर में कोई भी औरत नहीं और चार-चार नादान बच्चे-बच्चियाँ। रातभर उनकी सार-सम्हाल का कठिन काम। दाई-नौकर पर उन्हें कितना छोड़ूँ? रात में सभी नौकर थककर सो जाते हैं। फिर मुझे ही बच्चों को थपथपाकर सुलाना और कभी-कभी शीशी से दूध भी पिलाना पड़ता है।'

'आप तो अमीर आदमी हैं—कोई बढ़िया 'गवर्नेस' क्यों नहीं रख लेते? बच्चों की ठीक से देख-भाल करती।'

'अखबार में बहुत इश्तहार निकलवाए, कितनी आईं भी, मगर मनलायक कोई न मिली।·······उफ़,·······यह भी···

कोई जिन्दगी है ? कोई सर सहलानेवाला नहीं, कोई भर मुँह बात करनेवाला नहीं। आखिर कहाँ तक ऑफिस में समय गुजारूँ ?'

माला आँखों से फर्श को देख रही है और कानों से नवलजी की बातें सुन रही है।

'मालाजी ! हर औरत या मर्द जिन्दगी में एक सहारा ढूँढ़ता है—एक अभिभावक। हर की चाह होती है कि बीमारी में उसके माथे को कोई सहलाए, हर की कोशिश रहती है कि ढलती उम्र के साथ कोई उसका साथ दे; मगर मेरी··· हाय री मेरी किस्मत ! मेरा कुछ भी न हो सका—मैं कुछ भी न पा सका। बदकिस्मत !·········'

कि उनकी बेटी वल्लरी दौड़ती चली आई और उनकी गोद में बैठ गई।

'देखिए इसकी हालत। कल बुखार में बुत थी और आज नंगी दौड़ रही है। नौकर-दाई परवा नहीं करते। कितनी उन्हें गाली दूँ ? कितनी डाँट-फटकार करूँ ? और यह भी ऐसी है कि मैं ही इसे कपड़ा पहनाऊँ तो पहनेगी, मैं ही इसे खिलाऊँ तो खाएगी। अजीब जिद्दी है।·······क्यों वल्लरी ! कपड़े क्यों नहीं पहनती ? नंगी क्यों घूम रही हो ?'

'पापा ! गलमी लग लही है। नहीं पहनी गूँ।'

'बेटी, फिर बुखार आ जाएगा। चलो-चलो, कपड़े पहनाकर तुम्हें सुला दूँ.........मालाजी! आप कृपया कल फिर आने का कष्ट करें। कल मीटिंग है। उसके बाद आपसे बातें करूँगा। अच्छा होता आप आठ बजे रात तक आतीं।....... देखिए मेरी हालत। आपको भी मुझपर दया आती होगी—है न यह बात?'

बिना कुछ उत्तर दिए, 'नमस्ते' कहती माला उठी और चल दी। नवलजी उससे कोई उत्तर सुनने को लालायित ही रह गए।

× × ×

दूसरे दिन ठीक आठ बजे रात में माला श्री नवल प्रभाकर के घर पर पहुँच गई। नवलजी लॉन में अकेले बैठे सिगार पी रहे हैं। इधर-उधर की बत्तियाँ बुझी हुई हैं—लॉन में कुछ अँधेरा-सा दिखता है। ऑफिस भी खाली है—मालूम होता है, आज जल्द ही नवलजी काम से निपट गए हैं।

माला को देखते ही वह सायवान तक चले गए और उसे लिए फिर लॉन में चले आए।

'मिठाई खिलाइए। आपका 'कनफर्मेशन' हो गया।'—उन्होंने बड़े तपाक से कहा।

माला यह खबर पाकर बड़ी खुश हुई और उन्हें धन्यवाद

देती हुई बोली—'बड़ी कृपा हुई आपकी मुझपर। आपका एहसान मैं कभी न भूलूँगी।'

नवलजी ने अपनी कुर्सी माला के समीप खींचकर बड़े प्रफुल्लित होकर कहा—'वाह, आप भी मुझे शर्मिन्दा करती हैं? आपके जैसी योग्य शिक्षिका पाकर हमारा बालिका-विद्यालय धन्य-धन्य हो गया। मिसेज़ शरण ने लिखा है कि आपकी विशेष योग्यता संगीत में है—वाद्य और गान दोनों में। अब कमिटी ने तय किया है कि अगले साल से संगीत-क्लास भी खोला जाय और आपको कुछ और तरक्की देकर उसका इंचार्ज बना दिया जाय।'

'यह तो आपकी तथा आपकी कमिटी की महत्ता है।'

'वाह, हम तो आपको पाकर गौरवान्वित हो गए हैं। उस दिन विद्यालय-स्थापना-दिवस को आपने जो भजन गाया था—वही···वही····'एरी मैं तो प्रेम दिवानी'······उसे सुनकर कमिटी के सभी सदस्य बड़े प्रभावित हो गए हैं। फिर मिसेज़ शरण की जो सिफ़ारिश हुई तो मुझे बड़ा बल मिला। बस, मेरा प्रस्ताव तो चुटकियों में पास हो गया।'

नवल बाबू का सिगार बुझ गया तो उन्होंने फिर से उसे जलाया और कुछ सोचते हुए धुआँ उड़ाने लगे।

'मालाजी! मैं आपको छः महीने से जानने लगा हूँ

और इस बीच आपसे आत्मीयता भी काफ़ी हो गई है। इसी आत्मीयता के बल पर मैं अपनी एक अर्ज़ी आपके दरबार में पेश कर रहा हूँ। आशा है इन्कार न कर आप इसे स्वीकार ही करेंगी।'

'वाह, आप भी कैसी बातें कर रहे हैं? मुझसे जो भी आपकी सेवा हो सके...मैं अपने को धन्य-धन्य समझूँगी।'—माला उन्हें कुछ कौतूहल से देखने लगी।

'बस, आपसे मुझे यही उम्मीद भी थी। आप मेरी हालतों से परिचित हैं। अब दिन इस तरह बीत नहीं पाते। रात तो पहाड़ हो जाती है। फिर बाल-बच्चे बिलल्ला हो रहे हैं। आपही को सबकी लाज रखनी है। एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।'

'मैं आपकी बात समझी नहीं......' वह कुछ अकचकाकर उन्हें देखने लगी।

नवलजी ने चट उसका हाथ पकड़ लिया और हल्की मुस्कान के साथ कहा—'सीधी-सादी बात—मेरी जीवन-संगिनी बन जाइए। बस, दोनों का बेड़ा पार। मेरी और आपकी समस्याएँ एक-सी हैं। दोनों का निदान यही है। पल्लव और और सरिता मेरे भी बच्चे होंगे और मेरे आपके। यही मेल-जोल तो हमारी नई गिरस्ती की नींव होगी। सिर्फ़ आपके 'हाँ'

की देर है। फिर तो यह गृहिणी-विना सूनी-सूनी अट्टालिका इठला उठेगी, मेरा बर्बाद दिल आबाद हो जाएगा। समाज भी इस सम्बन्ध को सहर्ष स्वीकार कर लेगा क्योंकि हम कोई अनुचित माँग तो उससे करते नहीं। मैं आपके सामने एक भिखारी हूँ—भिखारी।'—नवलजी धधाई आँखों से उसे देखने लगे।

माला एक झटके से हाथ छुड़ाकर अलग खड़ी हो गई और उसने सिर्फ इतना ही कहा—'मुझे क्षमा कर दें मंत्रीजी, मैं एक····।'

और वह तेजी से फाटक की ओर लौट पड़ी। नवलजी किंकर्त्तव्यविमूढ़ वहीं खड़े-के-खड़े रह गए। यवनिकापतन इस तेजी से हो जाएगा—ऐसी उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी।

माला जब घर पहुँची तो उसके नेत्रों से चिनगारी फूट रही थी। नख से शिख तक गुस्से में बुत। अन्दर आते ही मिसेज शरण ने पूछा—'बेटी, मेरी मिठाइयाँ नहीं लाई?'

'हाँ, लाई हूँ। लीजिए···।'

'अरे, मजाक करती हो? यह तो कागज का एक टुकड़ा है।'

'पढ़ लें उसे।'

वह चश्मा लेकर पढ़ती है—'ऐं ! यह क्या ? तुम इस्तीफा दे रही हो ?—मिसेज़ शरण चकित हो उसे देखने लगीं।

'हाँ, अब मैं आपके स्कूल में नहीं रह सकती। मुझे माफ़ कर दें।'

'कारण ?'

माला एक सुर में सारी कहानी कह गई। मिसेज़ शरण सर झुकाए सब सुनती रहीं—सुनती गईं। उनके चेहरे का रंग बदलता गया। फिर तमतमाकर बोलीं—'मगर, इसका निदान इस्तीफा नहीं है माला ! अबला बनकर जीने का युग अब बीत गया। अब तुम सबला हो—सबला। समझी ?' —उनकी आवाज़ में गज़ब की बुलन्दी है।—'यदि तुम मैदान छोड़कर भाग गई तो समाज के ये आततायी आए दिन हमें सताते ही रहेंगे। इनका जमकर मुकाबला करना है हमें, नहीं तो इस स्वतन्त्र देश की नारियों का कल्याण नहीं होगा। देश की स्वतन्त्रता के साथ-साथ भारत की नारियों की भी बेड़ियाँ टूट चुकी हैं। तुम अपनी शक्ति जगाओ—तुम सशक्त हो—अशक्त नहीं। समझी ? मैं इस मामले को कल ही कमिटी में पेश करूँगी और तुम्हारे इस्तीफे के बदले मंत्री महोदय से ही इस्तीफा दिलाऊँगी। इन हरकतों को मिसेज़ शरण अब बर्दाश्त नहीं कर सकती। मैंने भी जीवन के कितने बसन्त और

'क्यों, आज नाश्ता नहीं किया ?'—किरण ने बड़ी आजिज़ी से पूछा।

'हाँ, आज दिमाग़ काम नहीं कर रहा है। जबसे माला का पत्र आया है, मन भिन्नाया हुआ है। मिसेज़ शरण का साया उसे ज़रूर मिला मगर नवलजी से झगड़ा मोल लेकर वहाँ उसका रहना ठीक नहीं।'—अजीत ने कहा।

'तो क्या आप चाहते हैं कि नवलजी की वह बाँदी बनकर रहे ? मिसेज़ शरण का विरोध बिल्कुल ठीक है।'—किरण का भी नारीत्व जाग उठा।

'नहीं-नहीं, यह मैं नहीं कहता···परन्तु···परन्तु'

'परन्तु क्या ?'

'यही कि उसके सर पर अपने ही झमेले बहुत हैं—अच्छा होता यदि वह वहाँ से हट जाती। समाज की रूढ़ियों से लड़े, ज़माने के तेवर से लड़े, नरक के इन कीड़ों से लड़े,

फिर अपने-आपसे लड़े—इस चौतरफी मार को वह सह न सकेगी—टूट जाएगी।……भय है, कहीं उसके पैर न उखड़ जायँ। अभागिन बेचारी………'

'तो रास्ता क्या है?'

'वही तो ढूँढ़ रहा हूँ।…मैं अभी फैक्टरी-मैनेजर के यहाँ जा रहा हूँ। उनसे प्रार्थना करूँगा कि मजदूरों के लिए नारी-कल्याण-मन्दिर जो खुला है उसमें माला को रख लें तो सब समस्या हल हो जाय। मेरी नजरों के सामने वह रहेगी तो मैं उसे हर प्रहार से बचाता रहूँगा। उसके जीवन के साथ-ही-साथ दो नादान बच्चों का भी जीवन जुड़ा है। यहाँ फैक्टरी से सब कुछ मिलेगा—सुन्दर वेतन, मकान, कोयला, दवा-दारू…और तो कोई रास्ता नजर नहीं आता।'

'वाह! इससे बढ़कर और रास्ता क्या होगा? यह तो बड़ा सुन्दर सुझाव है। आप मुझे भी अपने साथ लेते चलिए। मैं फैक्टरी-मैनेजर की बीवी से शिल्पकला-केन्द्र में अक्सर मिलती रहती हूँ। मैं भी अपनी ओर से सिफ़ारिश करूँगी।'

'तो चलो, अभी चलो। बात बन गई तो आज ही अर्जी देकर मैं लखनऊ भाग जाऊँगा और समय पर लाकर 'इन्टरव्यू' करा दूँगा।'

वह चश्मा लेकर पढ़ती है—'ऐं ! यह क्या ? तुम इस्तीफा दे रही हो ?—मिसेज़ शरण चकित हो उसे देखने लगीं ।

'हाँ, अब मैं आपके स्कूल में नहीं रह सकती । मुझे माफ़ कर दें ।'

'कारण ?'

माला एक सुर में सारी कहानी कह गई । मिसेज़ शरण सर झुकाए सब सुनती रहीं—सुनती गईं । उनके चेहरे का रंग बदलता गया । फिर तमतमाकर बोलीं—'मगर, इसका निदान इस्तीफा नहीं है माला ! अबला बनकर जीने का युग अब बीत गया । अब तुम सबला हो—सबला । समझी ?' —उनकी आवाज़ में ग़जब की बुलन्दी है ।—'यदि तुम मैदान छोड़कर भाग गई तो समाज के ये आततायी आए दिन हमें सताते ही रहेंगे । इनका जमकर मुकाबला करना है हमें, नहीं तो इस स्वतन्त्र देश की नारियों का कल्याण नहीं होगा । देश की स्वतन्त्रता के साथ-साथ भारत की नारियों की भी बेड़ियाँ टूट चुकी हैं । तुम अपनी शक्ति जगाओ—तुम सशक्त हो—अशक्त नहीं । समझी ? मैं इस मामले को कल ही कमिटी में पेश करूँगी और तुम्हारे इस्तीफे के बदले मंत्री महोदय से ही इस्तीफा दिलाऊँगी । इन हरक़तों को मिसेज़ शरण अब बर्दाश्त नहीं कर सकती । मैंने भी जीवन के कितने बसन्त और

पतझड़ देखे हैं—तूफान भी आएगा तो देख लूँगी।'—उनका खून खौल उठा।

माला ने नारी का ऐसा उग्र, ऐसा ओजस्वी रूप कभी न देखा था। मिसेज़ शरण ने कागज के उस टुकड़े को टुकड़े-टुकड़े कर खिड़की से बाहर फेंक दिया और तमक कर कमरे में तेजी से टहलने लगीं।

✣

फैक्टरी-मैनेजर के पास कोई बहुत अच्छे आवेदन नहीं आए थे। उन्होंने माला की दरख्वास्त ले ली और 'इन्टरव्यू' कार्ड भी दे दिया। अजीत को उन्होंने काफ़ी आश्वासन भी दिया।

अजीत को लगा कि उसके माथे से बड़ा भार टल गया। एक आस भी बँध गई, अब माला का जीवन एक रास्ते पर आ जाएगा। वह शाम की गाड़ी से लखनऊ रवाना हो गया। इधर किरण ने अमिताभ को नई मौसी के आने की बात बताई। वह ऐसा ललक गया कि कभी सोता ही नहीं।

अजीत का तार पाने पर किरण अमिताभ को लेकर स्टेशन गई। गाड़ी आने में कुछ देर थी मगर अमिताभ उतावला हो रहा—'अम्मा, अभी तक गाड़ी क्यों नहीं आई?'

'घबड़ाओ नहीं बेटा, आएगी—तुरत आएगी।'

लम्बी प्रतीक्षा के बाद जब गाड़ी स्टेशन पर पहुँची तो अमिताभ अपने पापा के डब्बे की ओर दौड़ा। किरण भी उसके पीछे-पीछे दौड़ी।

माला ने ट्रेन से उतरते ही किरण को गले से लगा लिया और अमिताभ को गोद में उठाकर चूम लिया।

'ले बेटे, ले! ये टॉफी के डिब्बे—ये खिलौने। पापा

को न देना—ऐं ?'—माला ने एक बार फिर अमिताभ का मुख चूम लिया।

'माला ! तुमने तो मुझे तड़पाकर रख दिया। पल्लव और सरिता नहीं दिखते। देखो, अमिताभ का भी चेहरा उतर गया। बड़ा ललक गया था। उन्हें देखने को जी ललच रहा है।'—किरण ने उलाहना दिया।

'क्या करूँ बहन ! मिसेज शरण उन्हें आने ही नहीं देतीं। वे उनसे हिल-मिलकर इतने सट गए हैं कि अलग करना भी एक समस्या ही है। खैर, यहाँ सब ठीक-ठाक कर एक बार जाऊँगी तो उन्हें पकड़ लाऊँगी।'—माला ने अपनी मजबूरी जताई।

'इनसे मैंने खास तौर से कहा था, बच्चों को न छोड़िएगा।'—किरण ने फिर मीठी शिकायत पेश की।

'अजी, माला को ही लाना मेरे लिए एक कठिन समस्या थी। मिसेज शरण इसे कतई छोड़ने को तैयार न थीं। किसी तरह घंटों माथापच्ची करके तो माला को छुट्टी दिलाई। अब उनसे बच्चों को छीन लाता तो वह आसमान सर पर उठा लेतीं। माला को लाने में मुझे मामूली झंझट उठाना पड़ा है ?'

'खैर, चलो, वे भी आ ही जाएँगे।'

फैक्टरी के पास ही रेलवे-स्टेशन है। सामान कोई खास

नहीं है। यही हैन्डबैग और अटैची। सभी पैदल ही क्वार्टर की ओर चल पड़े।

कुछ देर के बाद नहा-धोकर माला किरण के साथ चौके में घुस गई और मिल-जुलकर नाश्ता बनाने लगी।

'क्या तमाशा कर रही हो माला! रातभर की ट्रेन की थकावट....'

'वाह बहन, तुम भी कैसी बातें करती हो! आज पूरी और एक तरकारी मैं ही बनाऊँगी।'

माला ने किरण की एक न सुनी। पूरी और तरकारी बनाकर ही वह चौके से निकली।

खाने की मेज पर चारों बैठे हैं। अजीत पूरी और तरकारी का एक कौर लेते ही जोर से हँस पड़ा।

'क्यों, क्या बात है?'—किरण ने पूछा।

'इन पूरियों और तरकारियों में जाने कितने अतीत के चित्र छिपे हैं। इनका स्वाद पाते ही बनारस की कितनी स्मृतियाँ जाग पड़ीं। जाने कितने दिनों तक इस स्वाद की पूरी-तरकारी खाए बिना मैं एक दिन भी नहीं रहता था। क्यों माला, ठीक है न?'

'हाँ, माँ ने मुझे खाना बनाना सिखाया था। वह बड़ा स्वादिष्ट खाना बनाती है।'—माला ने मुस्करा दिया।

सभी हँसकर चुप हो गए। कुछ देर को वातावरण शान्त और थिर हो गया तो माला ने कहा—'किरण बहन से मिलकर आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। नारी का ऐसा सुन्दर रूप आज तक मैंने नहीं देखा था अजीत बाबू! मेरी बहुत दिनों की तमन्ना थी कि बहन से मिलकर केवल एक बात पूछूँगी—'आखिर तुम कितनी महान् हो! तुम्हारी महानता के सामने मेरा माथा झुक जाता है।.......।'

'वाह, यह अच्छी रही! मेरी बड़ाई कर मुझे लज्जित न करो।'—किरण बोली।

'ना बहन, बड़ाई नहीं—मैं सच कहती हूँ। यदि तुम न होती तो अजीत बाबू के इतने समीप मैं आ पाती? यह तो तुम हो कि इनका प्यार, इनका सद्भाव—इनका आश्रय मुझे मिल पाया।'—माला का गला भर आया। वह इससे ज्यादा कुछ बोल न सकी। किरण हँस पड़ी। अजीत मौन रह गया।

✠

'हाँ, मैंने लाख कोशिश की मगर उसने मसाले नहीं बताए। कहती—मसाले बता दूँगी तो मेरी दूकान पर कोई न आएगा।'—माला ने हँसते हुए कहा।

कि किसी ने बाहर से आवाज़ लगाई—'अजीत बाबू हैं?'

'कौन है?'

'मैं!—शकरुल्ला।'

'अभी आया—।'

'क्या, मेरे लिए अब पर्दा हो गया? ड्योढ़ी लगेगी?'

'नहीं-नहीं, अभी आया—।'

तब तक मैनेजर का पी० ए०, शकरुल्ला धड़धड़ाता अन्दर घुस आया और ज़ोरों का ठहाका मार कर बोला—'बड़े छिपे रुस्तम निकले यार! सुना है फिर से घर बसाने जा रहे हो। जाने कहाँ से एक विधवा उड़ा लाए हो। नौकरी भी दिला दी।'

'बदतमीज़! चलो-चलो, बाहरवाले कमरे में बैठा जाय।'

'भई, एक प्याली चाय—'

'चलो, वहीं अमिताभ लाएगा।'

'उफ़! जो आजतक मुझसे न हुआ, तुम···तुम करने जा रहे हो······पर्दा····।'

आँगन में आई और ठमक कर बैठ गई। साथ-साथ पोस्टमास्टर की बीवी रामप्यारी भी है। माला धीरे-से उठकर अन्दर चली गई। उसे दोनों ने घूरकर देखा भी।

'यह क्या आग तुमने लगवा दी है? सारे फैक्टरी में कुहराम मच गया है।'—रामप्यारी ने भी जुल दिया।

'छीः—छीः! और वह भी विधवा! बच्चों की माँ! यह भी लगन में कोई लगन है? और, तुम कैसी बीवी हो कि शह दिए जा रही हो? ऐसी सतवन्ती बनने से काम न चलेगा। तुम्हें वह घर से निकलवाकर रहेगी—हाँ! ढलती उम्र की यारी तबाही है—तबाही।'—शनो ने फिर आग उगली।

'आ बेटा, आ।.........अमिताभ बेटा! नई माँ कैसी है? पलटू कह रहा था कि स्टेशन पर ही खिलौने मिल रहे थे तुम्हें!'—रामप्यारी ने फिर नहले पर दहला दिया। अमिताभ लजा गया।

किरण को जैसे सर्द मार गया। उसे कोई उत्तर नहीं सूझ रहा। चुप है—बुत।

अजीत को बाहर से अन्दर आने की हिम्मत न होती। क्या सोचा था और क्या हो गया!

बाहर शकरुल्ला अजीत को नसीहतें दे रहा है और अन्दर

शनो और रामप्यारी किरण की खूब खबर ले रही हैं। घंटों यह तमाशा चला।

उधर गोधूली की अँधियारी में बन्द कमरे में पड़ी माला बेजार आँसू बहा रही है—आँसू। दिल उसका छलनी हुआ जा रहा है। पलक मारते ही दुनिया बदल गई उसकी।

रात में खाने की मेज पर सभी बैठे हैं। सभी हँसने की, कुछ कहने की कोशिश करते हैं मगर हँस नहीं पाते, कुछ कह नहीं पाते। अप्रत्याशित परिस्थिति है, अप्रत्याशित वातावरण।

'घबड़ाओ नहीं माला! जरा भी चिन्ता न करो। यही इस दुनिया का अपना रंग-रवैया है। यहाँ फूलों के गुच्छे और जूतों के हार साथ-साथ मिलते हैं। जब यह दुनिया गाँधी जैसे सन्त को पहचान न पाई—उसकी भी हत्या कर बैठी—तो फिर हम जैसे अदनों की क्या बिसात? हमें वह छोड़ देगी? ...हाँ, तुम झुको नहीं—सीधी खड़ी रहो, तभी तुम्हारा कल्याण है।'—अजीत की आवाज में एक गम्भीर दृढ़ता है।

'हाँ बहन, यह सब होता ही रहता है। जहाँ चार रहते हैं वहाँ चार तरह की बातें भी होती हैं। किसका कितना सुना जाय!'—किरण ने भी कहा।

माला चुप। फिर कुछ इधर-उधर की बातें होती रहीं,

मगर मन सबका खिन्न है। सभी जल्द ही अपने-अपने बिस्तर पर चले गए।

× × ×

चार बजे भोर............

...ऐं! मेरे कमरे का टेबुल-लैम्प क्यों जल रहा है? क्या बात है? मेरा दरवाजा भी खुला है!'—अजीत धड़फड़ाकर उठा। बाहर निकला तो देखा, बाहर जाने का दरवाजा भी खुला है—चोर आया क्या?—हाँ, चोरी हो गई!

'किरण, उठो-उठो। सभी दरवाजे खुले हैं। माला को भी जगाओ। शायद चोरी हो गई!'—अजीत ने आवाज लगाई।

'ऐं! माला के कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द नहीं! ...बत्ती जल रही है मगर वह वहाँ नहीं है।....'बाथरूम' में गई होगी।...मगर नहीं, वह भी खुला है। उसकी अटैची भी गायब—हैंडबैग भी!'

अजीत सन्न हो गया।....तो वह चली गई! माला चली गई—चली गई! हाय, यह तो बड़ा बुरा हुआ!'

पति-पत्नी कुछ देर को जैसे पागल हो गए। कुछ सूझ नहीं रहा, अन्दर-बाहर करते रहे।

कि अजीत की नजर टेबुल-लैम्प के नजदीक ही रखी हुई

खुली डायरी पर पड़ी—ऐं ! मेरी डायरी !···हाँ, हाँ, अब याद आया—कल माला ले गई थी पढ़ने के लिए। मैं तो इसे तुम्हें भी नहीं पढ़ाता था मगर वह ज़िद पकड़ गई—जबर्दस्ती सेफ में से निकाल ले गई—ऐं ! यह तो उसी की राइटिंग है—डायरी के आख़िरी पृष्ठ पर उसने कुछ लिख दिया है—

"अन्तिम पृष्ठ—आज माला चली गई। माला चाहती है, वह संघर्षों के बीच ही रहे। शायद उसका जन्म ही इसी के लिए हुआ है। मगर चिन्ता कैसी ? वह बहुत प्रसन्न जा रही है—मिसेज़ शरण की शरण में। उसे इतना तो भरोसा है ही कि मेरा प्यार, मेरा स्नेह, मेरी अटूट ममता उसे सदा मिलती रहेगी—चाहे वह कहीं भी रहे—कैसी भी रहे। यह भरोसा ही तो उसके संघर्षमय जीवन का सम्बल रहेगा। मन कहीं भी रमे, तन कहीं भी रहे—मगर उसका हृदय तो बस मेरे·······।

·······दुनिया उसे विधवा कहती है। हाँ, वह विधवा है, उसकी माँग का सिन्दूर धुल चुका है····मगर क्या सचमुच वह विधवा है ? वह तो मानती है कि उसने वैधव्य का यह अभिशाप अंगीकार किया—अपने सुहाग की लाली अचल करने को।···तो वह विधवा नहीं है ?—कदापि नहीं !—वह सदा

कहती—अँधियारी में तो रात्रि का सुहाग कोई देख न पाता, मगर उषा की लाली—वही नित-प्रति उगती हुई लाली—क्या उसके सुहाग की निशानी नहीं है?·······उसकी शिकायत है कि मैंने कभी भी उसका मन न रखा, मान न रखा। मेरी बात रखने को उसने अग्निपरीक्षा भी स्वीकार कर ली—इतना सब कुछ सह लिया सिर्फ मेरे लिए। अब वह मुझसे माँग रही है अपनी एक ही अतृप्त लालसा की पूर्त्ति—मृत्यूपरान्त अपनी सूनी माँग में मेरे कर का सिन्दूर·············!"